7

5,6,7,8, 14 સમાચાર નથી

SKM / 691/97

Size - 25 x 17 Cms.

Page. 119 Leaves

श्रीगणेशायनमः ॥ अथश्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यसटीकप्रारभ्यंते ॥ ऋषिरुवाच ॥ मू० ॥
गीतायाश्चैवमाहात्म्यं ॥ यथावत्सूतमेवद पुराणमुनिनाप्रोक्तं ॥ व्यासेनश्रुतिनोदितं ॥१॥ टी० ॥ शौनकऋषि सूतजीसेपूछतेहैंकिहे सूतजीश्री व्यासकृतश्रीमद्भगवद्गीताकामाहात्म्य आपजयार्थवर्णनकीजिये ॥१॥

मू० ॥ सूतउवाच ॥ पृष्टंवैभवतयत्तन्महद्गोप्यंपुरातनं ॥ नकेनशक्यतेवक्तुंगीतामाहात्म्यमुत्तमं ॥२॥ टी० ॥ सूतजीबोलेकिगीतामाहात्म्य अत्यन्तगोप्यहै और सेउत्तम प्राचीनहैइस्वास्ते उसेश्रीकृष्णकेसिवायऔरकोईभीयथार्थनहीं कहसक्ताहै ॥ ॥ ० ॥ ॥२॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ कृष्णोजानातिवैसम्यक् क्वचित्कौंतेयएवच ॥ व्यासोवाव्यासपुत्रोवा याज्ञवल्क्योऽथमैथिलः ॥३॥ टी० ॥ गीतामाहात्म्यकोअच्छेप्रकारसेतो श्रीकृष्णहीजानतेहैंलेकिनथोड़ाथोड़ाअर्जुनव्यासशुकदेवयाज्ञवल्क्यभीऔरजनकजानतेहैं ॥ ० ॥ ॥३॥ ॥ ० ॥ ॥३॥

मू० ॥ अन्येश्रवणतः श्रुत्वालोकेसंकीर्तयंतिच ॥ तस्मात्किंचिद्वदाम्यद्यव्यासस्यास्या

न्मया श्रुतं ॥ ४ ॥ टी॰ ॥ औरमनुष्यकानों मेंसुनकर लो
कमेंबरानितोकरतेहैंलेकिनजानंतेनहींहैंमैं नेव्यासजी केमुखसेकुछ
थोडासासुनाहैउसे कहताहूँ ॥ ॥४॥

मू॰ ॥ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंद
नः ॥ पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धंगीतामृ
तंमहत् ॥५॥ टी॰ ॥ सम्पूर्णउपनिषद्गायरूपअर्जुन
बच्छारूप दुहनेवालेश्रीकृष्णजी अमृतरूपगीता सुन्दरबुद्धिवा
लेअर्जुनकोपिलाया ॥ ॥५॥

मू॰ ॥ सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृ
तंददौ ॥ सर्वलोकोपकारार्थंतस्मैकृष्णा
यतेनमः ॥ ६ ॥ टी॰ ॥ जिसकृष्णभगवानने अर्जुन
केसार्थीपनाकरतेसमय सम्पूर्णलोकके उपकारकेवास्ते
अर्जुन कोगीतारूपअमृतपिलायाहै उन्हेंमेरानमस्कारहै ॥ ६

मू॰ ॥ संसारसागरंघोरंतर्त्तुमिच्छति योज
नः ॥ गीतानावंसमारुह्य पारंयातुसुखेन
सः ॥ ७ ॥ टी॰ ॥ जोपुरुषअत्यन्तघोरसंसारसमुद्र

केपारजायाचाहैवहगीतारुपीनावमेंबैठकरसुखसेपारचलाजावै ७

मू० ॥ गीताज्ञानंश्रुतंनैवंसदैवाभ्यासयोग

तः ॥ मोक्षमिच्छतिमूढात्मायातिबालक

हास्यतां ॥ ८ ॥ टी० ॥ जिसपुरुषनेगीतासम्बन्धीज्ञा

नको सदाअभ्यासयोगसे नहींसुनाऔरमोक्षचाहताहै उसमू

र्खकोलडकेभीहंसतेहैं ॥ ॥८॥

मू० ॥ येश्टरावन्तिपठन्तेवगीताशास्त्रम

हर्निशं ॥ नतेवैमानुषाज्ञेयादेवास्वनसं

शयः ॥ ९ ॥ टी० ॥ जोमनुष्यरातदिनगीतापढतेऔरसु

नतेहैंउन्हेंनिस्संदेहदेवताजाननाचाहिये ॥ ॥ ० ॥ ॥९॥ ॥ ०

मू० ॥ गीताज्ञानेनसम्बोध्यकृष्णः प्राहत

मर्जुनम् ॥ अष्टादशपदस्थानंगीताध्या

येप्रतिष्ठितं ॥ १० ॥ टी० ॥ श्रीकृष्णभगवाननेअ

र्जुनकोगीताकेज्ञानसेप्रबोधकरकेकहाकिइसगीताकेएकएक

अध्यायमेंअष्टादशपदअर्थात् विष्णुकापरमपदमैंनेस्थापितकिया

है ॥ १० ॥

मू० ॥ मोक्षस्थानंपरंपार्थसगुणंवाथनिर्गु

णं ॥ सोपानाष्टादशैरेवंपरंब्रह्माधिगच्छ

ति ॥११॥टी॰॥ हेअर्जुनअठारहअध्यायरूपसीढ़ियोंके
द्वाराअपनीइच्छाकेअनुसार सगुण॥ अथवानिर्गुणब्रह्मकोप्राप्तहोता
है ॥११॥

मू॰ ॥ मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दि
ने ॥ सकृद्गीतांभसि स्नानं संसारमलनाशन
म् ॥१२॥टी॰॥ दिनप्रतिदिनजलस्नानशरीरको औरगीता
रूपजलकास्नान संसाररूपीमलकोनष्टकरदेताहै ॥०॥१२॥०

मू॰॥ गीताशास्त्रस्य जानाति पठनं नैव पाठनं
॥ परस्मान्नश्रुतं ज्ञानं नैव श्रद्धा न भावना ॥
॥१३॥टी॰॥ जोपुरुषगीताशास्त्रकापढ़नापढ़ावनानहीं [illegible]
ताव दूसरेसे सुनाभीनहीं औरउसमें श्रद्धाव भावनासेभीरहितहै॥ ॥१३॥

मू॰॥ स एव मानुषे लोके पुरुषो विड्वराहकः
॥ यस्माद्गीतां न जानाति नाधमस्तत्परो
जनः ॥१४॥टी॰॥ वहमहाधम पुरुषग्रामशूकरकेसमानहै
॥१४॥

मू॰॥ धिक्तस्य मानुषं देहं धिग्ज्ञानं धि
क्कुलीनतां ॥ गीतार्थं न विजानाति नाध
मस्तत्परो जनः ॥१५॥टी॰॥ जोगीतार्थकोनहींजा

नताहैउसमहाधम पुरुषकेज्ञान देहऔरकुलीनताकोधीक्कारहै ॥१५॥

मू० ॥ धिक्सुरूपंशुभंशीलंविभवंसद्गृहाश्रमं ॥ गीताशास्त्रंनजानातिनाधमस्तत्परोजनः ॥ १६ ॥ टी० ॥ जोगीताशास्त्रकोनहीजानताहैउसमहाधमपुरुषकेसुन्दररूपसुन्दरशीलवविभवऔरश्रेष्ठगृहाश्रमकोधिक्कारहै ॥१६

मू० ॥ धिक्प्रागल्भ्यंप्रतिष्ठांचपूजांमानंमहात्मतां ॥ गीताशास्त्रेरतिर्नास्तितत्सर्वंनिष्फलंजगुः ॥ १७ ॥ टी० ॥ जिसपुरुषकीगीताशास्त्रमेंप्रीतिनहीहैउसकीहिम्मतप्रतिष्ठापूजामानऔरमहात्मापनेकोधिक्कारहैऔरउसकासबनिष्फलहै ॥ ० ॥ ॥ १७ ॥ ॥ ०

मू० ॥ धिक्तस्यज्ञानमाचारंव्रतंचेष्टांतपोजशः ॥ गीतार्थपठनंनास्तिनाधमस्तत्परोजनः ॥ १८ ॥ टी० ॥ जोपुरुषगीतानहींजानताउसअधमपुरुषकेज्ञानआचारव्रतचेष्टातपऔरयशकोधिक्कारहै ॥१८॥

मू० ॥ गीतागीतंनयज्ज्ञानंतद्विद्ध्यासुरसंज्ञकं ॥ तन्मोघंधर्मरहितंवेदवेदान्तग

हितं ॥१८॥ टी॰॥ जोज्ञानगीताकागायानहींहैवहज्ञास
रीज्ञानव्यर्थवधर्मरहितऔरबेदबेदान्तकरिकेनिन्दितहै॥ ॥१८॥

मू॰ ॥ यस्माद्धर्ममईगीतासर्बज्ञानप्रयोजि
का॥ सर्बशास्त्रमयीगीतातस्माद्गीताबि
शिष्यंते ॥२०॥ टी॰॥ गीतासम्पूर्णधर्मऔरशास्त्रम
ईहैऔरसबज्ञानोंकी प्रकाशकहैइसलियेसबसेश्रेष्ठहै॥ ॥२०॥ ॥

मू॰ ॥ गीतासुगीताकर्तव्याकिमन्यैःशास्त्र
संग्रहैः॥ यास्वयंपद्मनाभस्यमुखपद्म
बिनिश्चिता ॥२१॥ टी॰॥ जोसाक्षात्भगवतकेमु
खकीकहीहुईगीताकोअच्छेप्रकारपढ़ेतोऔरशास्त्रोंकेपढ़नेकाकु
छभीप्रयोजननहींहै॥ ॥२१॥

मू॰॥ योऽधीतेसततंगीतांदिवारात्रौय
थार्थतः॥ स्वपन्गच्छन्बदंस्तिष्ठन्शा
श्वतंमोक्षमाप्नुयात् ॥२२॥ टी॰॥ जोपुरुष
रातदिनसोतेजागतेखड़ेचलतेबोलतेनिरन्तरअर्थसमेतगीताकोप

दतेरहतेहैंवेसनातनमोक्षकोप्राप्तहोतेहैं ॥ ॥२२॥

मू० ॥ शालग्रामशिलाग्रेतुदेवागारेशिवाल
य ॥ तीर्थेनद्यांपठेद्यस्तुबैकुंठंयातिनि
श्चितं ॥ २३ ॥ टी० ॥ शालग्रामकेसन्मुखदेवमन्दिरमें
शिवालयमेंतीर्थमेंऔरनदीकेकिनारेजोपुरुषगीताकोपढताहै
वहनिस्संदेहबैकुंठकोजावेगा ॥ ॥२३॥

मू० ॥ देवकीनन्दनःकृष्णोगीतापाठेनतुष्य
ति ॥ यथा न वेदैर्दानैश्चयज्ञतीर्थव्रतादि
भिः ॥ २४ ॥ टी० ॥ देवकीनन्दनश्रीकृष्णभगवानजितना
गीतापाठसेसंतुष्टहोतेहैंउतनावेदपाठनादिदानयज्ञतीर्थऔरव्र
तादिकोंसेनहींसंतुष्टहोते ॥ ॥२४॥

मू० ॥ गीताऽधीताचयेनापिभक्तिभावेनचे
तसा ॥ तेनवेदाश्चशास्त्राणिपुराणानिच
सर्बशः ॥ २५ ॥ टी० ॥ जिसपुरुषनेभक्तिभावसमेतचित्त
लगायकेगीताकाअध्ययनकियावहसम्पूर्णबेदशास्त्रऔरपुरा
णोंकासारजानचुका ॥ ॥२५॥

मू॰ ॥ गीतार्थं ध्यायते नित्यं कृत्वा कर्माणि भूरिशः ॥ जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहान्ते परमं पदम् ॥ २६ ॥ टी॰ ॥ जो पुरुष हमेशा गीता के अर्थ को ध्यान करता रहता है वह बहुत से कर्म करता हुआ भी जीवनमुक्त व विज्ञानी है और शरीर त्यागने पर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होता है ॥ ॥ ॥ २६ ॥

मू॰ ॥ योगिस्थाने सिद्धिपीठे शिष्टाग्रे सत्सभासु च ॥ यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन्याति परां गतिं ॥ २७ ॥ टी॰ ॥ योगियों के स्थान में सिद्धस्थानों में श्रेष्ठ पुरुषों के सन्मुख साधुसभा में यज्ञ में और विष्णुभक्त के सन्मुख पाठ करने से मोक्ष पाता है ॥ २७

मू॰ ॥ गीतापाठं च श्रवणं यः करोति दिने दिने ॥ क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥ २८ ॥ टी॰ ॥ जो पुरुष दिन प्रतिदिन गीता पाठ करते और सुनते हैं वे अग्निष्टोमादिक और अश्वमेधादिक यज्ञियां दक्षिणा समेत कर चुका ॥ २८

मू॰ ॥ यः शृणोति च गीतार्थं कीर्तयेच्च स्वयं पुमान् ॥ श्रावयेच्च परार्थं वै स प्रयाति परं पदं ॥ टी॰ ॥ ०

जोपुरुषगीताकाअर्थकहताहैऔरदूसरेको सुनाताहैवहपरंपदकोप्राप्तहोताहै॥२९

मू०॥गीतायाःपुस्तकंनित्यंयोऽर्चयत्येवसादरं॥विधिनाभक्तिभावेनतस्यपुण्यफलंशृणु॥३०॥टी०॥जोपुरुषआदरसमेतविधिपूर्वकऔरभक्तिभावसंयुक्तगीताकीपुस्तककोपूजताहैउसकीपुण्यकाफलसुनिये॥३०

मू०॥शकलाचोर्वरातेनदत्तायज्ञेभवेत्किल॥व्रतानिसर्बतीर्थानि दानानिसुबहून्यपि॥३१॥टी०॥गीताकापूजनेवालासंपूर्णपृथ्वीदानदेचुकाऔरव्रततीर्थबहुतसेदानभीकरचुका॥ ॥३१॥

मू०॥भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्रनोप्रविशंतिवै॥अभिचारोद्भवंदुःखंपरेणापिकृतंचयत॥॥३२॥टी०॥जिसघरमेंगीता पूजनहोताहैउसमेंप्रेतभूतपिशाचादिकऔरमंत्रजंत्रजादूटोनादिनहींप्रवेशकरसक्तेहैं॥ ॥३२॥

मू०॥नोपसर्पंतितत्रैवयत्रगीतार्चनंगृहे॥तापत्रयोद्भवापीडानैवव्याधिभयंतथा॥३३॥टी०॥जिसघरमेंगीताकीपूजाहोतीहैवहांदैहिकदैविकभौतिकतापोंकृतपीडाऔररोगादिकृतपीडानहीहोतीहै॥३३॥

मू॰॥ नशापंनैवपापंचदुर्गतिंनचकिंचन॥ देहो
रमयः षडेंतेबैनवाधंतेकदाचन॥३४॥टी॰॥
वहांकिसीकाशापऔरपापनहींलगताव दुर्गतिनहीहोसक्तिहैऔर
ज्ञानइन्द्रियांसमेतमनपीडानहींकरसक्ता॥ ॥३४

मू॰॥ गीताशास्त्रमिदंपुण्यंयःपठेतप्रयतःपुमा
न॥ विष्णोःपदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः
॥३५॥टी॰॥ जोपुरुषपुण्यरूपगीताशास्त्रकोप्रीतिसमेतहमेशा
पढताहैवलभयशोकादिकोंसेरहितहोनाहुआविष्णुपरमपदकोप्राप्तहोता
है॥३५॥

मू॰॥ भगवत्परमेशाने भक्तिरव्यभिचारिणी॥
जायतेसततंतत्र यत्रगीताभिनन्दनं॥३६॥टी॰
जोगीताकेअर्थकोनिरन्तरविचारकरताहैउसेअखण्डभक्तिप्राप्ति
होतीहै॥३६॥

मू॰॥ प्रारब्धंभुंजमानोऽपिगीताभ्यासे सदारतः
॥ समुक्तः ससुखीलोके कर्मणानोपबध्यते॥३७
॥टी॰॥ जोसर्बकालगीताकेअभ्यासमेंप्रीतियुक्तलगारहताहै
वलप्रारब्धवशसेसंसारभीभोगताहैलेकिनमुक्तऔरसुखीहैऔरकर्म
बंधनसेभीअलगहै॥३७॥

मू॰ ॥ महापापादिपापानि गीताऽध्यायी करोति चे
त् ॥ न किंचित्स्पृशते तस्य नलिनी दलमंभसा ।
।३८ ॥ टी॰ ॥ जो पुरुष नित्य ही गीता का श्रवण। पठन औरबिचार क
रताहै वह दैवयोगसे जो भूलमें ब्रह्महत्यादिक पाप भी कर डाले तौ वे कमल
के पत्तेमें जलकी तरह उससे लिपायमान नहीं होसक्ते हैं॥ ॥ ॥३८॥ ॥ ॥
मू॰ ॥ स्नातोवा यदिवास्नातः शुचिर्वा यदिवाऽशु
चिः ॥ बिभूतिं बिस्वरूपं च संस्मरन् सर्वदा शुचिः ।
३९ ॥ टी॰ ॥ स्नान किये होय अथवा न किये होय पवित्र होय अथवा
अपवित्र होय बिभूतियोग और बिस्वरूप दर्शनको स्मरण करनेसे सदा पवि
त्र होता है ॥३९॥
मू॰ ॥ अनाचारोद्भवं पापमवाच्यादिकृतं च यत् ॥
अभक्ष्यभक्षजं दोषमस्पर्शस्पर्शजं तथा ॥४०॥
टी॰ ॥ ज्ञाताज्ञानकृतं नित्यमिंद्रियैर्जनितं च य
त् ॥ तत्सर्बं नाशमायाति गीतापाठेन तत्क्षणा
त् ॥०४१॥० अनाचारसे निंदित शब्द बोलनेसे अभक्ष्य भक्षणसे न
छूने योग्यके छूनेसे जो पाप उत्पन्न होयें अथवा जो जान वा अजानमें नित्य पाप
उत्पन्न होयें और जो पाप इन्द्रियोंसे उत्पन्न होवें सम्पूर्ण गीताके पाठ करनेसे तत्काल ही
नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥४१॥

मू॰॥ सर्वत्रप्रतिभोक्ताच प्रतिग्राहीच सर्वशः ॥
गीतांपाठंप्रकुर्वाणो नलिप्येतकदाचन ॥४२॥

टी॰॥ जोसर्वत्रभोजनकरताहोयऔरसर्वदानलेताहोयवेपापभी
गीतापाठकरनेसेलिपायमाननहीहोवै ॥४२॥

मू॰॥ रत्नपूर्णांमहींसर्वां प्रगृह्यातिविधानतः ॥
गीतापाठनचैकेन शुद्धःस्फटिकवत्सदा ॥४३॥

टी॰॥ विधिसंमतरत्नपूरितपृथ्वीकोलेनेसेकेवलएकगीताकी
पाठसेशुद्धस्फटिकमणिवतनिष्पापहोजाताहै॥ ॥४३॥

मू॰॥ यस्यांतःकरणंनित्यं गीतायांरमतेसदा ॥
सर्वाग्निकःसदाजापी क्रियावान्सचपंडितः ॥
४४॥ टी॰ जिसकाअन्तःकरणसदागीतामेंरमणाकरताहैवहस
दासम्पूर्णअग्निहोत्रादिकोंकाऔरजपोंकाकरनेवालाऔरक्रिया
वानवपण्डितहै॥ ॥४४॥

मू॰॥ दर्शनीयःसधनवान्सयोगीज्ञानवान
पि ॥ सएवयाज्ञिकोध्यानीसर्ववेदार्थदर्श
कः॥४५॥ टी॰ वहीदर्शनयोग्यहैवहीधनवानहैवहीयो

गीहैवहीज्ञानीहैवहीयाज्ञिकवहीध्यानीहैऔरवहीसम्पूर्णबेदोंके

अर्थकादेखनेवालाहै ॥० ॥४५॥

मू० ॥ गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यंपाठप्रवर्त्तते ॥ त

त्रसर्बाणितीर्थानि प्रयागादीनिभूतले ॥४६॥टी०

जिसस्थानमेंगीताकापाठनित्यहोतीहैवहांप्रयाग आदितीर्थसदारहते

है ॥४६॥

मू० ॥ निवसंतिसदागेहेदेहेदेशेसदैवहि ॥ सर्बेदे

वाश्चऋषयो योगिनः पन्नगाश्चये ॥४७॥टी० गी

तापाठीकेघरमेंऔरदेहमेंसर्बदेवऋषियोगीऔरपन्नगसदाबसतेहैं

॥४७॥

मू० ॥ गोपालबालकृष्णोऽपिनारदोध्रुवपा

र्षदैः ॥ सहायोजायतेशीघ्रं यत्रगीताप्रबर्त्तते

॥टी०॥ जहांगीताप्रबर्त्तहोतीहैवहांनारदध्रुवादिसर्बपार्षदन

समेतगोपालबालकृष्णशीघ्रहीसहायकरतेहैं ॥ ॥०॥४८॥ ॥०

मू० ॥ यत्रगीताबिचारश्चपठनंपाठनंतथा ॥ त

त्राहंनिश्चितंपार्थनिवसामिसदैवहि ॥४९॥टी०

श्रीकृष्णभगवानअर्जुनसेकहतेहैंकिजहांनित्यहीगीताकाबिचा

रहोताहैवहांमैंनिःसंदेहसदारहताहूँ ॥ ॥० ॥ ॥४९॥ ॥०॥

मू० गीतामेहृदयंपार्थगीतामेसारमुत्तमं गीतामेज्ञानम

त्युग्रं गीतामेज्ञानमक्षय ॥५०॥टी० हेअर्जुन गीतामेराहृदयहै गीता मेराउत्तमस्थानहै गीतामेरासत्यतत्त्वऔरअक्षयज्ञानहै ॥५०॥

मू॰ ॥ गीतामेचोत्तमंस्थानंगीतामेपरमागृहं ॥ गी
ताज्ञानंसमाश्रित्य त्रिलोकींपालयाम्यहं ॥ ५१ ॥
टी॰ गीतामेराउत्तमस्थानहै औरगृहस्थानहैमेगीताकेज्ञानकोधारराकि
येहुएतीनोलोकोंकीपालनाहूं ॥ ॥५१

मू॰ ॥ गीतामेपरमाविद्याब्रह्मरूपानसंशयः ॥ अर्द्ध
मात्राक्षरानित्यास्वनिर्बाच्यपदात्मिका ॥ ५२ ॥ टी॰
गीतामेरीउत्तमविद्याऔरनिःसंदेहब्रह्मरूपव अर्द्धमात्रानाशरहितस
नातनअनिर्बाच्यपदरूप औरपराबाराणीरूपहै ॥ ॥ ॥५२॥ ॥

मू॰ ॥ गीतानामानिवक्ष्यामिगुह्यानिशृणुपां
डव ॥ कीर्तनात्सर्बपापानिविलयंयांतित
त्क्षणात् ॥ टी॰ ॥ हेपांडवगीताकेपीछेहुएनामहमतुमसेकह
तेहैंजिनकेकीर्तनसेतत्कालसम्पूर्णपापनष्टहोजातेहैं ॥ ५३ ॥

मू॰ ॥ गीतागंगाचगायत्रीसीतासत्यासर
स्वती ॥ ब्रह्मबिद्याब्रह्मवल्लीत्रिसंध्या
मुक्तगेहनी ॥ ५४ ॥ अर्द्धमात्राचिदानंदाभ
वघ्नीभयनाशिनी ॥ बेदत्रयीपराऽनंतात

त्वार्थज्ञानमंजरी ॥टी०॥ गीता १ गंगा२गायत्री३सी

ता४ सत्या५सरस्वती६ ब्रह्मविद्या७ ब्रह्मवल्ली८ त्रिसंध्या९ मु

क्तगेहिनी १० अर्द्धमात्रा ११ चिदानंदा १२ भवघ्नी १३ भयनाशि

नी १४ वेदत्रयी १५ परा १६ अनन्ता १७ तत्वार्थज्ञानमंजरी १८

।५४।५५।

मू०॥ इत्येतानि जपन्नित्यं नरो निश्चलमानसः

॥ ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथांते परमं पदं

॥टी० गीताके इन अठारह नामोंको नित्य मन स्थिर करके जपने

वाला पुरुष ज्ञानसिद्धिको प्राप्त होता है और मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५६

मू०॥ पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत

॥ तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥

५७॥टी०॥ जो सम्पूर्ण पाठके करनेमें असमर्थ होय तो आधो

अर्थात् नौ अध्याय पाठ करनेसे गोदानके बराबर पुण्य प्राप्ति हो

ती है॥५७

मू०॥ त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभे

त॥ षडंशं जपमानस्तु गंगास्नानफलं लभेत

॥५८॥टी० त्रिभाग अर्थात् छ अध्यायका पाठ करनेसे सोमयज्ञ

का और षडांश अर्थात् ३ अध्यायका पाठ करनेसे गंगास्नानका फल

प्राप्ति होता है॥॥५८॥॥

मू० ॥ तथाऽध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरंतरं
॥ इन्द्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवं ॥
५९ ॥ टी० और दो अध्याय को नित्य पाठ करने से इन्द्रलोक में जा
कर एक कल्प सुख भोग करता है ॥ ॥ ५९

मू० ॥ एकमध्यायकं नित्यं पठते भक्तिसंयुतः ॥
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम् ॥
६० ॥ टी० नेम और भक्तिसहित निरंतर एक अध्याय का पाठ
करने से रुद्रलोक में जाकर शंकर का गण होता हुवा कल्पान्त में मुक्ति को
प्राप्त होता है ॥ ॥ ६० ॥

मू० ॥ अध्यायार्द्धं च पादं वा नित्यं यः पठते
जनः ॥ स प्राप्नोति रवेर्लोकं मन्वंतरशतं स(
मा: ॥ ६१ ॥ टी० जो पुरुष गीता का आधा वा चौथाई अध्याय भी
नित्य नेम से पाठ करता है तो वह सौ मन्वन्तर तक सूर्यलोक में बास करता
है ॥ ६१ ॥

मू० ॥ गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पंच चतुष्ट
यं ॥ त्रिकद्विकैकमर्द्धं वा श्लोकानां च पठेन्न
रः ॥ चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतायु
तं ॥ ६२ ॥ टी० जो पुरुष गीता के दश श्लोक या सात पांच चार तीन

दोएकअथवाअाधेश्लोककानीनेमसहित निरन्तरपठनकरतोहै तोवहदशकिरोडबर्ष (अयुतअयुतबर्ष) तकचंद्रलोकमेंबासकरेगा ॥ ॥६२॥

मू० ॥ गीतार्थमेककालेपि श्लोकमध्यायमेवच ॥ स्मरंस्त्यक्त्वा जनो देहं प्रयाति परमंपदं ॥ ६३ ॥ टी० जोएकवारभीगीताकेएकअध्यायअथवाएकश्लोकको स्मरणकरताहुवाशरीरत्यागकरैतोमोक्षपावै ॥ ॥० ॥ ॥६३॥ ॥०॥

मू० ॥ गीतार्थंवापिपाठंवा शृणुयादंतकालतः ॥ महापातकयुक्तोपि मुक्तिभागी भवेज्जनः ॥ ६४ ॥ टी० जोपुरुषमरनेकेसमयगीताकाअर्थअथवापाठसुनता हुवाशरीरत्यागकरैतोमहापापीभीमुक्तिकोप्राप्तिहोवै ॥ ॥० ॥ ॥६४॥

मू० ॥ गीतापुस्तकसंयुक्तः प्राणांस्त्यक्त्वाप्र यातियः ॥ सवैकुंठमवाप्नोति विष्णुनासहमो दते ॥ ६५ ॥ टी० जोपुरुषगीताकेपुस्तकसंयुक्तशरीरत्याग करैवहविष्णुलोकमेजाकरविष्णुसमीपआनन्दकरै ॥ ॥ ॥६५॥ ॥

मू० ॥ गीताध्यायसमायुक्तो मृतोमानुषतांव्र जेत ॥ गीताभ्यासं पुनः कृत्वालभतेमुक्तिमुत

मं ॥ ६६ ॥ टी० जो मरने के समय में गीता का एक अध्याय भी प्राप्त होतो मनुष्य जन्म पाकर फिर गीताभ्यास करके मुक्ति होय ॥ ॥ ६६ ॥ ॥

मू० ॥ गीतेत्युच्चारसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ॥ यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठं प्रकीर्तयेत् ॥ ६७ ॥ टी० गीता शब्द उच्चारण करके शरीर त्याग करै तो भी मुक्ति का अधिकारी होय और यो जो कर्म गीता की पाठसंयुक्त किये जावें वे निर्दोष होकर पूरा फल देवें ॥ ॥ ६७

तत्तत्कर्म च निर्दोषं कृत्वा पूर्णमवाप्नुयात् ॥

मू० ॥ पितृनुद्दिश्य यः श्राद्धे गीतापाठं करोति वै ॥ संतुष्टा पितरस्तस्य निरयाद्यान्ति सद्गतिं ॥ टी० ॥ जो श्राद्ध में पितरों के निमित्त पाठ करै तो पितर संतुष्ट होकर नरक से मुक्ति को प्राप्ति होवें ॥ ॥ ६८

मू० ॥ गीतापाठेन संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ पितृलोकं प्रयान्त्येव पुत्राशीर्वादतत्पराः ॥ ६९ ॥ टी० ॥ गीतापाठ से पितर प्रसन्न होकर पुत्र को आशीर्वाद देते हुए पितृलोक को जाते हैं ॥ ॥ ६९ ॥

मू॰॥ लिषित्वा धारयेत्कंठे बाहुदंडे च मस्तके ॥ नश्यंत्युपद्रवाः सर्वे विघ्नरूपाश्च दारुणाः

॥ ७० ॥ टी॰ गीता लिषकर गलेमें वा भुजा पर अथवा मस्तकमें धा

रण करे तो उसके विघ्नरूप दारुण उपद्रव नष्ट हो जावें ॥ ॥ ७० ॥ ॥

मू॰॥ गीता पुस्तकदानं च धेनुपुच्छ समन्वितं ॥ दत्वा तत्सद्द्विजे सम्यक्कृतार्थो जायते जनः ॥ ७१ ॥ टी॰ ॥ जिसने गीताकी पुस्तक संमेत गायकी पु

छहाथमें लेकर गोदान दिया वह सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म कर चुका॰ ॥ ७१ ॥

मू॰॥ पुस्तकं हेमसंयुक्तं गीतायाः शुद्धमानसः ॥ दत्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवे ॥

७२ ॥ टी॰ ॥ जो पुरुष सात्विकी श्रद्धा और सुवर्ण संमेत गीता पुस्त

अच्छे
कका दान शुद्ध मनसें विद्वान ब्राह्मणको देय तो वह जन्मसें रहित हो जाय ॥
७२

मू॰॥ शत पुस्तकदानं च गीतायाः प्रकरोति यः ॥ स याति ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिवर्जितं ॥ ७३

टी॰ जो गीताकी सौ पुस्तकोंका दान किसी प्रकारसे भी करै तो ब्रह्म

लोकको प्राप्ति होकर जन्म मरणसे रहित होजाय ॥ ॥ ॰ ॥ ७३ ॥ ॥

मू॰॥गीतादानप्रभावेन सप्तकल्पाबधीः स
माः॥ विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुनासह
मोदते ॥ ७४ ॥टी॰॥ गीतादानकेप्रभावसे विष्णुलोकमेंसा
तकल्पतक विष्णुसंयुक्तरहिके आनन्दकरै ॥ ॥७४॥

मू॰॥सम्यक श्रुत्वाचगीतार्थं पुस्तकंयः प्रदाप
येत ॥ तस्मै प्रीतोस्मिभगवान् ददामिमनसेप्सि
तं ॥ ७५॥टी॰ श्रीकृष्णचन्द्रजी कहतेहैं किजोगीताकाअर्थ
सुनकर पुस्तककादानकरै उसेमैंमनबांछितफलदेताहूं॥ ७५॥

मू॰॥देहमानुष [illegible] विशार्येषुभारत ॥न
श्रृणोति पठत्येव गीताममृतरूपिणीं ॥ हस्ता
त्यक्त्वाऽमृतंप्राप्तं कष्टात्क्ष्वेडंसमश्नुते ॥ पीत्वा
गीतामृतंलोके लब्ध्वामोक्षंसुखीभवेत ॥ ७६
॥ ७७ ॥टी॰॥ जोमनुष्यदेहपाकरइसअमृतरूपिणींगीताकोन
पढतानसुनताहैवहहाथमेंआयेहुएअमृतको त्यागकरविषको कष्ट
सेपीताहैक्योंकिइसगीतारूपअमृतकोपानकरनेवालापुरुषमोक्ष
कोप्राप्तहोकरअत्यन्तसुखीहोताहै॥ ॥७६॥७७॥

मू॰॥जनैः संसारदुःखार्तैर्गीताज्ञानंचयैः श्रुतं

॥ संप्राप्तममृतंतेष्वगतास्तेसदनंहरेः ॥ ७८ ॥ संसारदुःखकरकेपीडितजिनमनुष्योंनेइसगीताकेज्ञानकोसुनकर समझाहैवेअमृतरूपहोनेहुएविष्णुलोककोप्राप्तहुएहैं ॥ ७८ ॥

मू० ॥ गीतामाश्रित्यबहवोभूभुजोजनकादयः ॥ निर्धूतकल्मषालोकेगतास्तेपरमंपदं ॥ ७९ ॥ टी० इसगीताकाआश्रयलेकरबहुतसेजनकादिराजापापसेरहितहोकरपरमपदकोप्राप्तगयेहैं ॥ ॥ ७९

मू० ॥ गीतासुनविशेषोस्तिजनेषुच्चावचेषुच ॥ ज्ञानेष्वेवसमग्रेषुसमाब्रह्मस्वरूपरािी ॥ ८० ॥ टी० गीतामेंऊंचनीचकाबिचारनहीहैक्योंकिआत्मासबमेंसमानेहैइसलियेयहब्रह्मस्वरूपिरािीहै ॥ ॥ ८० ॥

मू० ॥ योभ्यसूयतिगीतांचनिंदांबाप्रकरोतिच ॥ प्राप्नोतिनरकंघोरंयावदाभूतसंप्लवं ॥ ८१ ॥ टीका० ॥ जोगीताकीईर्षाओरनिन्दाकरताहैवहप्रलयतकनर्कमेंबासकरताहै ॥ ॥ ८१ ॥

मू० ॥ अहंकारेणमूढात्मा गीतार्थंनैवमन्यते ॥

॥ कुंभीपाके सपच्येत यावत्कल्पलयो भवेत् ॥

८२ ॥ जो अहंकार से गीता के अर्थ को नही मानता वह प्रलयकालतक कुंभीपाकनर्क में पचता है ॥ ॥ ८२ ॥

मू० ॥ गीतार्थं वाच्यमानं यो न शृणोति समीपतः ॥ स शूकर भवां योनिं मनेकां सोऽधिगच्छति ॥

८३ ॥ टी० ॥ जो गीता बांचने के समय में समीप जाकर नहीं सुनता वह कुत्ता और सूवर के अनेक जन्म पाता है ॥ ॥ ८३ ॥

मू० ॥ चौर्यं कृत्वा च गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत ॥ न तस्य स्यात्फलं किंचित्पठनं च वृथा भवेत् ॥

८४ ॥ टी० ॥ जो गीता की पुस्तक चुराकर उसमें पाठ करै तो उसको कुछ फल नहीं होता है वृथा परिश्रम होता है ॥ ॥ ८४ ॥

मू० ॥ यः श्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमादरात् ॥ नैवाप्नोति फलं लोके प्रमादाच्च वृथा श्रमं ॥

॥ ८५ ॥ टी० ॥ जो गीता के अर्थ को सुनकर अत्यन्त आदर से आनन्द नहीं होता उसे फल नही मिलता प्रमाद से वृथा होजाता है ॥ ८५

मू० ॥ गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च पट्टाम्बरं प्रवेष्टनं

॥ निवेदयेच्चतद्भक्त्या प्रीतये परमात्मनः ॥ ८६ ॥

टीका ॥ गीताको सुनकर परमात्मा की प्रशन्नता के लिये एक गी(

ताकी पुस्तक को रेशमी कपडे मे लपेटकर और कुछ सुवर्ण बांचनेवा

लेको देना चाहिये ॥ ॥ ८६ ॥

मू० ॥ वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्यवस्त्राद्युपस्करैः

॥ अनेकैर्बहुंविधैः प्रीत्या तुष्यतां भगवानिति ॥

८७ ॥ टी० ॥ गीता को सुनकर परमेश्वर की प्रसन्नता के लि

ये अनेक प्रकार के भूषन वस्[illegible] और द्रव्य देकर बक्ता को संतु

ष्ट करना और पूजना चाहिये ॥ ॥ ८७ ॥

मू० ॥ माहात्म्यमेतद्गीतायाः कृष्णप्रोक्तं सनात

नं ॥ गीतांते पठते यस्तु यथोक्तं फलमाप्नुयात

॥ ८८ ॥ यह गीतामाहात्म्य श्रीकृष्णचन्द्रजी का कहा हुवा सना

तन है इसको पाठ के अन्त में पढने से यथोक्त फल प्राप्त होता है ॥ ८८

मू० ॥ गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः प

ठेत् ॥ वृथा पाठ फलं तस्य श्रम एव हि केवलं

॥ ७९ ॥ टी॰ ॥ गीतापाठकरकेमाहात्म्यकोनबांचै तोउसके
पाठकरनेकाफलवृथापरिश्रमहै ॥ ॥७९॥

मू॰ ॥ एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीतापाठंकरोतियः
॥ श्रद्धयायः शृणोत्येव दुर्लभांगतिमाप्नुया
त ॥ ८० ॥ टी॰ ॥ जोइस माहात्म्यसंयुक्तगीतापाठकरेगा
याश्रद्धासमेतसुनेगा वहअत्यन्तदुर्लभमोक्षपदंपावैगा ॥ ८० ॥

मू॰ ॥ श्रुत्वापठित्वागीतांचमाहात्म्यंयःशृणो
तिवै ॥ तस्यपु[illegible]लोके भवेद्विमनसे
प्सितं ॥ ८१ ॥ टी॰ ॥ जोगीताकोपढकरयासुनकरमाहात्म्यको
पढतेयासुननेहैंवेमनबांछितफलपाते हैं ॥ ॥८१॥

इतिश्रीमद्वराहपुराणेसूतसौनक सम्बादे श्री
कृष्णप्रोक्तं श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य
सम्पूर्णम् ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॰ ॥१

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

हस्ताक्षर = हरिहरप्रशादह ॥



श्री

श्रीरामचन्द्राय नमः॥

श्रीगणेशायनमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवमहेश्वरः॥ गुरेवपरब्रह्म
तस्मैश्रीगुरवेनमः ॥१॥ अखंडमण्डलाकारम्व्या
प्तंयेनचराचरम्॥ तत्पदंदर्शितंयेन तस्मैश्रीगुरवेनमः
॥२॥ अज्ञानतिमिरांधस्यज्ञानांजनशलाकया॥ चक्षुर
निमीलितंयेनतस्मैश्रीगुरवेनमः॥ ३॥ यस्यप्रशादा
दहमेवविष्णुः मय्येवसर्वं [illegible]कल्पितंच॥ इत्थंविजाना
मितदात्मतत्वम तस्यांघ्रिपदमम प्रणितोस्मि नित्य
म॥ ४॥ प्रकाशितब्रह्मतत्वं प्रकृष्टगुणशालिनः॥ प्र
णवस्योपदेष्टारं प्रणमाम्यनिशंगुरुं॥५॥ ९ ९ ९

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः॥

अथश्रीभगवद्गीताप्रारभ्यते॥ अथध्यानम्॥ टीका॥
ॐ पार्थायप्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयंव्यासेनग्र
थिता पुराणमुनिनामध्येमहाभारतं॥ अद्वैतामृतवर्षिणीभ
गवतीमष्टादशाध्यायिनीमंवत्वामनुसंदधामिभगवद्गीतेभव

द्वेषिणीं ॥ टीका ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १
टी॰ हे ब्रह्मविद्या भगवद्गीते मैं तुम्हे मनसे धारणा करता हूं तु
म कैसी हो कि तुम्हे साक्षात् श्रीभगवानने अर्जुनसे और प्रा॰
चीन मुनि व्यासजी ने महाभारतके मध्यमे वर्णन किया है हे मातु
अठारह अध्यायवाली तुम से अद्वैत अमृत वरसती हो और
तुम संसारसे द्वेष करनेवाली हो ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥
मूल॰ ॥ नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविं॰
दायतपत्रनेत्र ॥ येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वा
लितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥ २ ॥ २ ॥ २ ॥ २ ॥ २
टीका॰ ॥ हे विशालबुद्धिवाले व्यासजी फूले हुए कम॰
लके तरह चौडे आपके नेत्र हैं मैं आपको नमस्कार करता हूं॰
आपने भारतरूपी तेलमें पूर्ण ज्ञानरूपी दीपकको प्रकाशित कि
या ॥ २ ॥ मू॰ प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये
॥ ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥ ३ ॥
टीका॰ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करता हूं कैसे हैं म
हाराज भक्तोंके वास्ते कल्पवृक्ष हैं और एक छडी हाथमे लि
ये हुए अर्जुनके वास्ते गीतारूप अमृत दुहा है जिन्होंने ॥ ३ ॥
मूल॰ ॥ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ॥

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥४॥

टी० ॥ सम्पूर्ण उपनिषद गायरूप और अर्जुन वच्छारूप दुहनेवाले श्री कृष्ण चन्द्रजीने गीतारूप अमृत सुन्दरबुद्धिवाले अर्जुनको पिलाया ॥४॥ ॥४॥ ॥४॥ ०

मू० ॥ बसुदेवसुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम् ॥ ० ॥
देवकी परमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥ ॥५॥

टी० ॥ वसुदेवके पुत्र जगतके गुरु श्री महाराजदीप्तिमान मूर्त्तिवाले ज्ञानस्वरूप कंस चाणूरके मारनेवाले और देवकीको परम आनंद देनेवाले श्री कृष्ण चन्द्रजीको नमस्कार करता हूं

मू० ॥ भीष्मद्रोणत[illegible]यद्रथजला गांधारनीलोत्पला शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन बेलाकुला ॥ अश्वत्थाम विकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्त्तिनी सोत्तीर्णा खलु पांडवै रणनदी कैवर्तकः केशवः ॥६॥ ॥६॥ ॥६॥ ॥६॥ ॥६॥

टी० ॥ श्री कृष्णचन्द्रजीके मल्लाह होनेके कारणसे कुरुवंसरूप रणनदीको जिसमें भीष्मद्रोण किनारारूप और जयद्रथजलरूप व गान्धारीके पुत्र नीलेकमलरूप और शल्य घड़ियालरूप कृपाचार्यधारारूप व करणबेलिरूप और अस्वत्थामा व विकर्ण श्रेष्टमच्छरूप और दुर्जोधनचक्ररूप

थेपांडवउत्तरे ॥ ६॥ ६॥ ॥ ६॥ ॥ ६॥ ॥ ६॥ ॥ ६॥ ॥ ६॥

मू॰ ॥ पाराशर्यवचःसरोजममलंगीतार्थगन्धोत्कटं ॥ नानाख्यानककेसरंहरिकथासंबोधनाबोधितम् ॥ लोकेसज्जनषट्पदैरहरहःपेपीयमानंमुदा ॥ भूयाद्भारतपंकजंकलिमलप्रध्वंसिनःश्रेयसे ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥

टी॰ ॥ भारतरूपकमल जिस्मेंगीताकाअर्थश्रेष्टसुगंधरूप औरबहुततरहकीकथामकरंदरूपहैं व्यासजीकेवचनरूपतालाबमेंजप्याहुवाहै औरहरिकथारूपसंबोधनोंकरकेयुक्त वज्ञानसेप्रफुल्लितहैं औरभ्रमररूपसज्जनरसलेनेवालेहैं जिस्मेंऐसानिर्दोषमहाभारतहमाराकल्यानकरे ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥ ॥ ७॥

मू॰ ॥ मूकंकरोतिवाचालंपंगुंलंघयतेगिरिं ॥ यत्कृपातमहंवंदे परमानंदमाधवम् ॥ ८॥

टी॰ ॥ मैंतिनपरमानंदमाधवकोनमस्कारकरताहूं जिनकीकृपागूंगेकोवानीयुक्तकरदेनीहै औरलुंजेकोपरबतउलंघनकरासक्तीहै ॥ ८॥ ॥ ८॥ ॥ ८॥

मू० ॥ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः

स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदै र्गायंतियं सामगाः

॥ ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यंतियं योगि

नो ॥ यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः

।९॥ टी० ॥ ब्रह्मा वरुण इन्द्र मरुत देवता दिव्य स्तोत्रों कर

के जिस्की स्तुति करते हैं और शामवेद के गानेवाले अंग और

पदक्रम सहित जो उपनिषद हैं तिन उपनिषदों समेत वेदों क

रके जिन्हें गाते हैं और योगी ध्यान मे जिसे देषते हैं और जि

स्के अंत को देवता व असुर कोई भी नही जानते ऐसे आदि नी

यश्वेश्वर को नमस्कार करता हूं ॥९॥ ॥९॥ ॥९॥

॥इति ध्यानम ॥ ॐ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ मूल०

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥ माम

काः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ ।१॥

टी० ॥ हे संजय धर्मक्षेत्र रूपी कुरुक्षेत्र मे मेरे पुत्र और

पांडुपुत्र इकठ्ठे होकर क्या करते हैं ॥१॥ ॥१॥

संजय उवाच ॥ मू० ॥ दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं

दुर्योधनस्तदा आचार्य मुपसंगम्य राजा वच

नमब्रवीत ॥२॥ ॥२॥ ॥२॥ ॥२॥

टीका॰॥ हेधृतराष्ट्र संग्राममेंपांडवोंकीव्यूहरचनायुक्तसे
नाकोंदेखकरकेतुम्हारेलडकेदुर्योधननेद्रोणाचार्यकेपास
जाकरऐसाकहा॥ ॥२॥ ॥२॥ ॥२॥ ॥२॥

मूल॰॥ पश्यैतांपाण्डुपुत्राणामाचार्यमहतींचमूम्॥ व्यूढांद्रुपदपुत्रेणतवशिष्येणधीमता॥३॥

टीका॥ हेआचार्यपांडुराजाकेलडकोंकी इस
आप महानसेनाकोंदेखिये जिसेतुम्हारेबुद्धिमान शिष्यद्रुपदयु
त्र (धृष्टद्युम्न) नेव्यूहरचनायुक्तकियाहै॥ ॥३॥ ३॥

मू॰॥ अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि॥ युयुधानोबिराटश्चद्रुपदश्चमहारथः॥४॥४॥

टीका॰॥ औरइससेनाकेबीचयुद्धकरनेमें भीमअर्जुनके
समानधनुर्धारीमहाबलीऐसेशूरबीरबहुतबिद्यमानहैं ति
नकेनामयहहैं महारथीद्रुपदराजा युयुधानराजा बिराटराजा ४

मू॰॥ धृष्टकेतुश्चेकितानःकाशीराजश्चबीर्यवान्॥ पुरुजित्कुंतिभोजश्चशैब्यश्चनरपुंगवः॥५॥

टीका॰॥ औरबिशेषपराक्रमी धृष्टकेतुराजा चेकितान
राजा काशीराजाऔर सबमनुष्योंमें श्रेष्ठपुरुजितराजा कुं
तिभोजराजा शैब्यराजा ॥५॥ ॥५॥ ॥५॥

युधामन्युश्च बिक्रांत उत्तमोजाश्च बीर्यवान् ॥
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्वएव महारथाः ॥ ६ ॥ टीका० और बिशेषपराक्रमी युधामन्युराजा बीर्यवाला उ० त्तमोजाराजा और सुभद्राकेलडके अभिमन्यु और द्रौपदीके प्रतिबिन्ध्यादि पंचपुत्र येसब महारथीहैं ॥ ६ ॥ ॥

मू० ॥ अस्माकंतु बिशिष्टायेतान्निबोधद्विजोत्तम ॥ नायकामम सैन्यस्य संज्ञार्थंतानब्रवीमिते
टीका० हे ब्राह्मणोमेश्रेष्ठ द्रोणाचार्य आपमेरीसेनाके श्रेष्ठसेनापतियोंके नामसुनिये ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥

मू० ॥ भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥ अश्वत्थामा बिकर्णश्च सौमदत्तीर्जयद्रथः । ८
टीका० आपद्रोणाचार्य्य भीष्मपितामह कर्ण और युद्धमेजीतनेवाला कृपाचार्य्य अश्वत्थामा बिकर्ण सौमदत्ति औरजयद्रथ ॥ ८ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ८ ॥

मू० ॥ अन्येचबहवः शूरामदर्थेत्यक्तजीविताः
नानाशस्त्रप्रहरणा सर्वेयुद्धबिशारदाः ॥ ९ ॥ टी० ऐसे और भी बहुत शूरबीर मेरी जीतिकेवास्ते अपने जीनेकी आस छोड़ अनेक प्रकारके हथियार लियेयुद्धमें अत्यंत कुशलत्यारहैं ९

मू॰॥ अपर्याप्तंतदस्माकंबलंभीष्माभिरक्षितम॥
पर्याप्तंत्विदमेतेषांबलंभीमाभिरक्षितम॥१०॥टीका॰॥ यहहमारीसेनाअत्यंतप्रबलबुद्धिमानभीष्मपितामहकरकेसबओरसेरक्षितहै औरपाण्डवोंकीनिर्बलसेना आलसीभीमसेनकरकेरक्षितहै ॥१०॥ ॥१०॥ ॥१०॥

मू॰॥ अयनेषुचसर्वेषुयथाभागमवस्थिताः॥ भीष्ममेवाभिरक्षन्तुभवन्तःसर्वएवहि ॥११॥टी॰॥ द्रोणाचार्य्यादिकसम्पूर्णयोधाव्यूहरचनायुक्तहोकरप्रवेशमार्गोंमें स्थितसबओरसे भीष्मपितामहकीरक्षाकरो॥ ॥११॥

मू॰॥ तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धःपितामहः॥ सिंहनादंविनद्योच्चैःशंखंदध्मौप्रतापवान॥१२॥
टी॰॥ हेधृतराष्ट्रदुर्योधनकेप्रसन्नताकेलिये महानप्राक्रमवाला भीष्मपितामहकुरुबंशमेंवृद्धसिंहनाद (गर्जि) करकेऊंचेशब्दसेशंखको बजानेलगा॥ ॥१२॥ ॥१२

मू॰॥ ततःशंखाश्चभेर्यश्चपणवानकगोमुखाः॥ सहसैवाभ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत॥१३॥टीका॰ जिससेनापतिभीष्मकी प्रवृत्तिकेपीछे दुर्योधनकीसेनामेंअनेकशंखभेरी पणव अनक गोमुख आदिबाजासी

घ्रही बजनेलगे ॥ ॥१३॥ ॥१३॥ ॥१३॥

मू० ॥ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥ माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ टी० ॥ तिन भीष्मादिकोंके शंखादिकोंके शब्द सुननेके पीछे श्वेतवर्णवाले घोडोंकरकेयुक्त महानरथपर स्थित श्रीकृष्णभगवान और अर्जुननेभी दिव्यशंखोंकोबजाया ॥ ॥१४॥ ॥१४॥

मू० ॥ पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥ पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ टीका० ॥ श्रीकृष्णभगवान्पांचजन्यनामशंखको और अर्जुनेदेवदत्तनामशंखकोंबजानेलगे और लोकोंकोभयकरनेवालेकर्महैं जिस्केतथा वृकोदर यानेतीक्ष्णाग्निउदरवालेभीमसेनने पौंड्रनाम महाशंखकोबजानेलगे ॥ ॥१५॥ ॥

मू० ॥ अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥ टी० कुंतीपुत्रराजायुधिष्ठिर अनंतविजयनामशंखको औरनकुलसहदेवसुघोषऔरमणिपुष्पकनाम शंखोंको क्रमसेबजानेलगे ॥ मू० ॥ काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥ धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्वकिश्चापरा(

जितः ॥ १७ ॥ टी॰ महान (श्रेष्ठ) धनुषवाला काशीराजा महारथी सिखंडी धृष्टद्युम्न और सत्रुओंकरके अजित सात्विक राजा ॥ मू॰ ॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्बशः पृथिवीपते ॥ सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ टी॰ ॥ द्रुपदराजा द्रौपदीके पंच पुत्र महान धनुषधारी सुभद्रा का पुत्र (अभिमन्यु) ये सम्पूर्ण अपने अपने शंखोंको बजानेलगे ॥

१८

मू॰ ॥ स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि ब्यदारयत् ॥ नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो ब्यनुनादयन् ॥ १९ ॥ टी॰ वह महान शब्द आकाश और पृथ्वीमें भरगया और दुर्योधनके और उसके सम्बन्धियोंके हृदयको बिदारन (भययुक्त) करदिया

१९

मू॰ ॥ अथ ब्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥ प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥ टी॰ हे धृतराष्ट्र तिस भयके पीछे युद्धके उद्यम संयुक्त आपके सम्बन्धियोंको देख तिस समय कपिध्वज अर्जुन गांडीव धनुष उठाय ॥ २० ॥ ॥ २० ॥ ॥ २० ॥ ॥ २० ॥

मू॰ ॥ हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते अर्जुन उवाच ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥ टी॰ ॥ श्रीकृष्णभगवानसे ऐसा कहनेलगे कि हे भगवान्

दोनोसेनाओंकेबीच मेरेरथको खडाकरो ॥ ॥२१॥

मू०॥ यावदेतान्निरिक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थिता
न् ॥ कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे॥

टी०॥ जिसस्थानसे कामनावाले जो युद्धके दुर्योधनादिकों
को मैं अच्छितरहसे देखसकूं वहां मेरेरथको खडाकरो जिन्हें देख
मैं यहबिचार करलूं कि किस्के साथ मुझे युद्धकरना उचितहै ॥२२॥

मू०॥ योत्स्यमानानवेक्षेऽहं यएतेत्रसमागताः॥
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धे युद्धे प्रिय चिकीर्षवः॥ टी०॥
दुर्बुद्धिवाले दुर्योधनके भलाई की इच्छाकरते हुए भीष्मद्रोणा
दिकजो युद्धकी इच्छासे इससंग्राममें मस्त हुए हैं उनसभोंको
मैं अच्छे प्रकारसे देखूं ॥२३॥ ॥२३॥ ॥२३॥

मू०॥ संजयउवाच॥ एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाके
शेन भारत॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथो
त्तमम्॥ टी०॥ हे धृतराष्ट्र इसप्रकार गुडाकेश अर्जुनकरके
कहे हुए हृषीकेश भगवान दोनोंसेनाओंकेमध्यमें उत्तमरथ
कोलेजाकर ॥२४॥ मू०॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः स
र्वेषां च महीक्षिताम्॥ उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेता
न्कुरूनिति॥ टी०॥ उसे भीष्मद्रोणादिके सन्मुखकरके
साकहनेलगे कि हे अर्जुन इनएकट्ठे हुए कौरवोंको तू देख॥२५॥

मू॰॥ तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथपितामहान् ॥ आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥ २६ ॥ टी॰ ॥ तब अर्जुनने खडे हो दोनो सेनाओं में पितरों पितामहों आचार्यों मातुलों भ्राताओं पुत्रों पौत्रों और सखाओं ॥ २६ ॥ ॥

मू॰॥ स्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥ टी॰ ॥ और स्वसुरों सुहृदों और बांधवों आदिको तिस अर्जुनने अच्छे प्रकारसे देखा ॥ २७ ॥ ॰ ॥ २७ ॥

मू॰॥ कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् अर्जुनौवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥ टी॰ ॥ तब तिनपर अत्यन्त कृपाकर दुखित होहो इसप्रकार कहने लगे कि हे कृष्ण इस युद्धमे इन बांधवों को देखकर ॥ २८ ॥ २८ ॥ २८ ॥

मू॰॥ सीदंति मम गात्राणि मुखंच परिशुष्यति ॥ वेपथुश्च शरीरेमे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ टी॰ ॥ हमारे हाथ पैर ढीले होगये मुख सूखा जाता है देह कांपती है और रोम खडे होते हैं ॥ ॥ २९ ॥ ॥ २९ ॥

मू॰॥ गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥

नचशक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीवचमेमनः॥३०॥टीका॥ मेरे हाथसेगांडीव धनुष गिरापडताहे और खा
लजलीजातीहे औरमनभ्रमताहे इसलिये मुझेआप
नेशरीरको स्थिनरखनेकी सामर्थ भीनहींहे॥ ३०॥ ०

मू०॥ निमित्तानिचपश्यामि बिपरीतानिकेशव
नचश्रेयोऽनुपश्यामि हत्वास्वजन माहवे॥३१॥०
टीका०॥ मैंअसुभशकुनोंकोदेषताहूं इसलिये इसयुद्ध
में अपनेबन्धुवोंके मारनेसे मैंकल्यानकोनहींदेखता॥३१॥

मू०॥ नकांक्षे बिजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच॥
किंनोराज्येनगोबिन्द किंभोगैर्जीवितेनवा॥टी०
हेकृष्णमैजीन राज्यऔर सुखोंको नहीं चाहता क्योंकिहे
गोबिन्द सुहृदोंको मार बिजयराज्य और सुखोंके प्राप्तहो
नेसे हमे कुछभी लाभनहोगा॥ ॥३२॥ ॥३२॥ ॥

मू०॥ येषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगासुखानिच
॥ तइमेवस्थिता युद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच॥
टी० जिनबांधवोंकेलिये राज्यविषय और सुखोंकीकांक्षाहै
तेबांधव अपनेप्राणों और धनकी आसाछोडं युद्धमेंस्थित
(खडे) हुएहैं॥ ॥३३॥ ॥३३॥ ॥३३॥

मू०॥ आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवच पितामहाः॥

मातुलाः श्वसुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्त
था ॥ ३४ ॥ टी. ॥ हे कृष्ण इस युद्धभूमि में आचार्य्य
पितर पुत्र पितामह मातुल श्वसुर पौत्र और साले आदि
सम्बन्धि ही देष पड़ते हैं ॥ ॥३४॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ३४॥

मू. ॥ एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोपि मधुसूदन ॥
अपि त्रैलोक्य राज्यस्य हेतोह किन्नु मही कृत ॥
३५ ॥ टी. ॥ हे मधुसूदन मुझे ये मारैं तो भी मैं इन आचार्य्या
दिकों को तीन लोक के राज्य के लालच से भी मारने की इच्छा
नही करता फिर केवल पृथ्वी के राज्य के लिये इन्है कैसे मारूंगा

मू. ॥ निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जना
र्दन ॥ पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥
३६ ॥ टी. ॥ हे जनार्दन इन दुर्योधनादिकों के नाश करने
से हमे क्या फल होगा बल्कि इन आततायीयों के मारने से पाप हो
गा ॥ ३६ ॥ मू. ॥ तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्स्व
बान्धवान् ॥ स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम
माधव ॥ ३७ ॥ टी. ॥ हे माधव धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्यो
धन आदिकों के मारने से हम सुखी नही होवेंगे ॥ ॥ ३७ ॥

मू. ॥ यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥ ०

कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहेच पातकम् ॥ ३८ ॥
टी० ॥ यद्यपि लालचसे इनभीष्मादिकोंको कुल और मित्रोंके नाशका दोष नही दिखलाई देता ॥ ॥ ३८ ॥ ॥
मू० ॥ कथंनज्ञेय मस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितु म् ॥ कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९
॥ टी० ॥ हे जनार्दन कुलके नाशके दोषको हमजानतेहैं इसलिये इसयुद्धसे हमैनिवृत्तहीहोना उचितहै ॥ ॥ ३९ ॥
मू० ॥ कुलक्षये प्रणश्यंति कुल धर्माः सनातनाः ॥ धर्मेनष्टे कुलंकृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
॥ टी० ॥ कुलकेनाशहोनेसे परम्पराके कुलधर्म नष्टहो जातेहैं और धर्मकेनष्टहोनेसे बचेहुएलोग अधर्मके आधीनहोतेहैं ॥ ४० ॥ मू० ॥ अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥ स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णशंकरः ॥ ४१ ॥ टी० ॥ हे वार्ष्णेय कुल के धर्मोकेनष्टहोनेसे कुलकी सम्पूर्ण स्त्रियां व्यभिचारिणी होजातीहैं इसलिये उनके वर्णशंकर पुत्र उत्पन्नहोतेहैं ॥
मू० ॥ संकरोनरकायैव कुलघ्नानां कुलस्यच ॥ पतंतिपितरोह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

टीका० ॥ बर्णसंकरकुलघातियोंके कुलको नष्ट करके उ
न्हेंनरकमेंडालतेहैं इसकारणकुलनाशकोंके पितरभी पिंडापानी
से रहितहोकर नरकमें पडतेहैं ॥ ॥४२॥ ॥४२॥

मू० ॥ दोषैरेतैः कुलघ्नानांबर्णसंकरकारकैः ॥ उ
त्साद्यंतेजातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः ॥ ४३॥

टी० ॥ हेभगवानकुलकोनाशकरके बर्णसंकरकरनेवाले पुरु
ष परम्पराकेप्राप्त जातिधर्मऔरकुलधर्मकोनष्टकरदेतेहैं

मू० ॥ उत्सन्नकुलधर्माणांमनुष्याणांजनार्दन ॥
नरकेनियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥ टी० ॥
हेजनार्दनहमनेआचार्य्योंसेसुनाहै कि जोपुरुषकुलजाति
आदिकोंकेधर्म नष्टकरदेतेहैं वेनिरन्तरनरकमेंबासकरतेहैं ॥

मू० ॥ अहोबतमहत्पापंकर्तुंव्यवसितावयम ॥
यद्राज्यसुखलोभेनहंतुंस्वजनमुद्यताः ॥ ४५॥

टी० ॥ बडाआश्चर्य्यहैकिहमनेराज्यऔरसुखकेलालचसे
अपनेबांधवोंकोमारनेको विचारकिया ॥ ॥४५॥ ॥४५॥

मू० ॥ यदिमामप्रतिकारमशस्त्रंशस्त्रपाणयः ॥ ०
धार्तराष्ट्रारणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत ॥ ४६ ॥ टी
का ॥ मैंनेइससमयहथियारोंकोइसलियेत्यागदियाहै कि

धृतराष्ट्रके पुत्रादिक अपने हथियारोंसे जबमुझेमारेंगे तबमेराकल्याणहोगा ॥ ॥४६॥ ॥४६॥ ॥४६॥

मू० ॥ संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थउपाविशत् ॥ विसृज्यसशरंचापं शोकसंविग्नमानसः ॥टीका०॥ हेधृतराष्ट्र शोककरकेपीडित अर्जुन संग्राममें इसप्रकारके वचनकहकर बानसमेतधनुषकोत्यागकरके रथकेऊपरबैठरहा ॥४७

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः इतिश्रीमद्भागवद्गीतासुपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे अर्जुनविषाद योगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ ॥१॥ ॥२॥ ॥२॥



श्रीगणेशायनमः॥ संजयउवाच॥ मूल॰॥
तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणं॥ वि
षीदंतमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः॥ १॥ टी॰॥
हेधृतराष्ट्र कृपादृष्टिसे दुखितअर्जुनकी आंखों में आं
सू भरआये हैं तिससे श्रीकृष्णभगवान् ऐसीबातें कहनेलगे
मू॰॥ श्रीभगवानुवाच॥ कुतस्त्वा कश्मलमि
दंविषमेसमुपस्थितम्॥ अनार्यजुष्टमस्वर्ग्य
मकीर्तिकरमर्जुन॥ २॥ टी॰॥ किहेअर्जुनतुमश्रे
ष्ठपुरुषहो इसलियेश्रेष्ठपुरुषोंके अयोग्यस्वर्गकावि
रोधी मोहऔर अकीर्ति तुम्हेंसोभानहींदेती॥ २॥ भा॰ २॥
मू॰॥ क्लैब्यं मास्मगमः पार्थनैतत्त्वय्युपपद्यते
॥ क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप॥ ३॥
टीका॥ हेकुन्तीपुत्रऐसीकरतातुम्हें उचितनहींहै हे
परंतप क्षुद्रहृदयकीदुर्बलताकोत्यागयुद्धकीजिये॥ ३॥
मू॰॥ अर्जुनउवाच॥ कथंभीष्ममहंसंख्ये
द्रोणंचमधुसूदन॥ इषुभिःप्रतियोत्स्यामि
पूजार्हावरिसूदन॥ ४॥ टीका॰॥ हेमधुसूदनहे
अरिसूदन श्रीकृष्णपूजाकेयोग्य भीष्मद्रोणादिकोंको

वाणोंसेमारनामुझेउचितनहींहै ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ४ ॥

मू० ॥ गुरूनहत्वाहिमहानुभावान् श्रेयोभोक्तुं
भैक्ष्यमपीहलोके ॥ हत्वार्थकामांस्तुगुरूनि
हैवभुंजीयभोगानरुधिरप्रदिग्धान ॥ ५ ॥ टी०
हेभगवानइनकामनावालेमहानभावगुरुओंकोमारनेसे
भिक्षाअन्नकोभोजनश्रेष्ठहैक्योंकिगुरुजनोंकोमारकर
रुधिरलिप्तविषयोंकेभोगनेसेक्याप्रयोजनसिद्धहोगा ॥ ५ ॥

मू० ॥ नचैतद्विद्मःकतरन्नोगरीयोयद्वाजये
मयदिवानोजयेयुः ॥ यानेवहत्वानजिजीवि
षामस्तेवस्थिताःप्रमुखेधार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥
टी० हेभगवानहमारेलिये भिक्षाऔरयुद्धमेकौनधर्म
श्रेष्ठहै औरहमजीतेंगेयाकौरवजीतेंगेहमसोनहीजानते
जिनभीष्मादिकोंकोमारकरहमजीवनेकीइच्छानहीकरते
वेहीयुद्धकेलिये सन्मुखखडेहैं ॥ ६ ॥ ॥ ६ ॥

मू० ॥ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छामि
त्वांधर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं
ब्रूहितन्मेशिष्यस्तेहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥
टी० ॥ हेभगवनकार्पण्यदोषऔरधर्मकीशंसयकरकेमे
राचित्तबिकलहुवाहै इसलियेमैआपकाशिष्यहोकरशरण

कोप्राप्त हुवा हूं आप मेरे कल्याण के लिये उपदेश कीजिये ।७।

मू॰ ॥ नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोक मुच्छोषणमिंद्रियाणां ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं ॥

टी॰ ॥ हे भगवन इन्द्रियों की चेतन्य शक्ति के नष्ट करनेवाले शोक को दूर करने के लिये मुझे कोई उपाय दिखलाई नहीं देता क्योंकि मैं शत्रुओं से रहित धन धान्य करके युक्त इन्द्र की पदवी को प्राप्त होने से भी आपना कल्यान नहीं देखता ॥ ८ ॥

मू॰ ॥ संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ॥ न योत्स्य इति गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥ टी॰ ॥ हे धृतराष्ट्र निद्रा बिजयी शत्रुनाशन अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से ऐसा कहकर कि हे गोबिन्द हम युद्ध नहीं करेंगे रथ के ऊपर मौन हो बैठ रहे ॥ ९ ॥

मू॰ ॥ तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये विषिदंतमिदं वचः ॥
१० ॥ टीका ॥ हे राजा श्रीकृष्ण भगवान दोनो सेनाओं के बीच में दुखित अर्जुन से हास्य करते हुए ऐसा कहने लगे ॥ १० ॥

मू॰ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥ गतासूनगता

सूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥११॥ टी० ॥ शोकक
रनेकेअयोग्य भीष्मद्रोणादिकोंकोंतूक्याशोककरताहै (
औरबड़ेबुद्धिमानपुरुषोंकेनकहनेयोग्यबातोंकोतूकहताहै पं
डितपुरुषमरे औरजीतेहुएबांधवोंकोनहीशोचतेहैं ॥११॥

मू० ॥ नत्वेवाहंजातुनासंनत्वंनेमेजनाधि (
पाः ॥ नचैवनभविष्यामः सर्वेवयमतःपरम्
॥१२॥ टी० ॥ हेअर्जुनमेकृष्णभगवान औरतूऔरस
म्पूर्णराजालोग आगेनही हुए औरभविष्यकालमेनहोंगे
ऐसानहींकहाजासकता क्योंकिहमतुमऔरएसब आगे
हुये औरफिरभी होवेंगे ॥ ॥१२॥ ॥१२॥

मू० ॥ देहिनोऽस्मिन्यथादेहे कौमारंयौवनं
जरा ॥ तथादेहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र नमुह्य (
ति ॥१३॥ टी० ॥ जैसेजीवआत्माको इसदेहमेकुमा
रयौवन औरवृद्धा यहतीनोअवस्था प्राप्तहोतीहैं तैसे
हीएकदेहकेपीछेदूसरीदेहभीप्राप्तहोतीहै इसलिये ज्ञा
नीपुरुषोंको मोहनही होना ॥१३॥ ॥१३॥

मू० ॥ मात्रास्पर्शास्तुकौंतेय शीतोष्ण सु
खदुःखदाः ॥ आगमापायिनोनित्यास्तां
स्तितिक्षस्वभारत ॥१४॥ टी० ॥ हेकुन्तीपुत्र

भरतवंसमेश्रेष्ठअर्जुनइन्द्रियोंकेस्पर्श शीतोष्णादिक सु
खदुःखइन्द्रियोंकेसम्बंधि उत्पन्ननाशवान तितिक्षा करणा
हीकोहोतेहैं इसलियेतुम्हें इन्हेंसहनाहीउचितहैं ॥ १४ ॥

मू॰ ॥ यंहिनव्यथयंत्येतेपुरुषंपुरुषर्षभ
॥ समदुःखसुखंधीरंसोमृतत्वायकल्पते
॥ १५ ॥ टी॰ ॥ हेपुरुषोंमेश्रेष्ठअर्जुन जिसधीरपुरुष
कोइन्द्रियोंकेसुखदुखसमानहोतेहैं सोपुरुषमोक्ष प्राप्त
केयोग्यहोताहै ॥ १५ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १५ ॥

मू॰ ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यते
सतः ॥ उभयोरपिदृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्व
दर्शिभिः ॥ १६ ॥ टी॰ ॥ असतवस्तुसत्यनहीहो
सक्तिहै ... सत्यनहीहोसक्ती इनदोनोका
निर्णयतत्वदर्शिपुरुषोंनेअच्छीतरहसे कियाहै ॥ १६ ॥

मू॰ ॥ अविनाशितुतद्विद्धियेनसर्वमिदंत
तं ॥ बिनाशमव्ययस्यास्यनकश्चितकर्तु
मर्हति ॥ १७ ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनजोसत्तारूपस्फुरणा
सम्पूर्णदृश्यप्रपंचमेंव्यापरहाहैंवहअबिनासीहै इसलि
येउसेनाशकरनेको कोईभीसमर्थनहीहे ॥ १७ ॥

मू॰ ॥ अंतवंतइमेदेहानित्यस्योक्ताःश१

रीरिणः ॥ अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥ १८ ॥ टी० ॥ हे भारत स्फुरणरूप एकही आत्मा के सम्पूर्ण शरीरहैं इसलिये तू युद्ध कर ॥ १८ ॥

मू० ॥ यएनंवेत्तिहंतारं यश्चैनं मन्यतेहतम् ॥ उभौतौनविजानीतो नायंहंतिनहन्यते ॥ १९ ॥ टी० ॥ जो पुरुषइस आत्मा को मारनेवाला या मरनेयोग्य मानतेहैं वेदोनों आत्मा को नहीं जानतेहैं क्योंकि यह आत्मा नकिसी को मारताहै नकिसीसे माराजासक्ताहै

मू० ॥ नजायतेम्रियतेवा कदाचिन्नायंभूत्वा भविता वानभूयः ॥ अजोनित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो नहन्यतेहन्यमानेशरीरे ॥ २० ॥ टी० ॥ हे अर्जुन यह आत्मादेव जन्ममरणसे रहितहै इसलिये इननामों करके अजनित्य शाश्वत और पुराण कहाजाता है और शरीरों के मरणेसे नहीं मरसक्ताहै ॥ २० ॥

मू० ॥ वेदाविनाशिनं नित्यं यएनमजमव्ययम् ॥ कथंसपुरुषः पार्थकंघातयतिहंतकम् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन जो पुरुष इस आत्मादेव को अविनासी नित्य अज और अव्यय रूप जानतेहैं वेपुरु

थकिसप्रकारकिसीकोमारतेवेपुरुषकिसीकोनमारतेहैं ओ
रनकिसीसेमारेजासक्तेहैं ॥२१॥ ॥२१॥

मू॰॥ वासांसिजीर्णानि यथा विहायनवानि
गृह्णातिनरोऽपराणि ॥ तथाशरीराणि
विहायजीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही
॥२२॥टी॰॥ जैसेमनुष्यपुराणेकपडेकोत्यागकरके
नयेकपडेपहनतेहैं वैसेहीयहआत्मादेव पुराणेशरीरत्यागकर
नवीनशरीरधारणकरतारहताहै ॥२२॥ ॥२२॥

मू॰॥ नैनंछिंदंतिशस्त्राणिनैनंदहतिपाव
कः॥ नचैनंक्लेदयंत्यापो नशोषयतिमारुतः
॥२३॥टी॰॥ यहआत्मादेवहथियारोंसे काटानहीं
जासक्ता औरअग्निसेजलायाजासक्ताहै नजलसे
सेगलसक्ता औरनपवनसुखासक्ताहै ॥२३॥

मू॰॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशो
ष्यएवच॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽ
यंसनातनः॥२४॥टी॰॥ यहआत्माछेदनेयो
ग्यनहीं जलानेयोग्यनहीहै भिजानेयोग्यनही औरसु
खानेयोग्यनहीहै इसलियेयहसर्वगत नित्यस्थिर स्वभा
व अचल और सनातनहै ॥ ॥२४॥ ॥२४॥

भी

मू० ॥ अव्यक्तोऽयमचिंत्योयमविकार्योऽ
यमुच्यते ॥ तस्मादेवंविदित्वैनं नानुशोचि
तुमर्हसि ॥ २५ ॥ टी० ॥ हेअर्जुनवेदभगवानने
इसआत्माकोअव्यक्त अचिंत्यओरअविकारी कहाहे
इसलियेयह आत्मा शोक करनेकेयोग्यनहींहै २५

मू० ॥ अथचैनं नित्यजातं नित्यंवामन्यसे
मृतम् ॥ तथापित्वंमहाबाहोनैनंशोचितु
मर्हसि ॥ २६ ॥ टी० ॥ हेअर्जुनजोतूइसआत्माको
अनित्य अर्थात जन्मलेनेओरमरनेवालाभीमानताहे तो
भी इसेशोचकरनाउचितनहींहै ॥ ६ ॥ ॥ २६ ॥

मू० ॥ जातस्यहि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवंजन्ममृत
स्यच ॥ तस्मादपरिहार्येऽर्थे नत्वंशोचि
तुमर्हसि ॥ २७ ॥ टी० ॥ क्योंकि जोजन्माहे वह
अवस्यमरेगा ओरजोमराहे वहअवस्यहीजन्मलेगा तो
ऐसे जन्ममरणमें शोककरना अयोग्यहे ॥ २७ ॥

मू० ॥ अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्या
निभारत ॥ अव्यक्तनिधनान्येवतत्रका
परिदेवना ॥ २८ ॥ टी० ॥ हेअर्जुनयहशरीर
आदिमे अव्यक्त ओरमध्यमेंव्यक्त ओरअंतमेभीअव्य

न्हीहै इसलिये ऐसेशरीरकेलिये दुःखक्योंकरनाचाहिये॥

मू० ॥ आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्च
र्यवद्वदतितथैवचान्यः॥ आश्चर्यवच्चैन
मन्यःशृणोतिश्रुत्वाप्येनंवदन्नचैवकश्चित्
॥२९॥ टी०॥ कोईपुरुषइसआत्माकोआश्चर्यवत्
देखताहै औरकोईआश्चर्यवत्हीकहताहै कोईआश्चर्य
वत्सुनताहै औरकोईपुरुषइसआत्माको सुनकरके
भीनहींजानताहै ॥२९॥ ॥२९॥

मू० ॥ देहीनित्यमवध्योऽयंदेहेसर्वस्यभा
रत॥ तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितु
मर्हसि ॥३०॥ टी०॥ [illegible] ...योंको
शरीरकेनाशहोनेसे यहजीवआत्मानाशनहींहोता इसलि
ये तूइनसबभूतोंको क्यों शोककरताहै ॥ ॥३०॥

मू० ॥ स्वधर्ममपि चावेक्ष्य नविकंपितुम
र्हसि ॥ धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रि
यस्यनविद्यते ॥३१॥ टी०॥ क्षत्रियोंकोधर्म
युद्धसेअधिक दूसराकोईकल्याणकासाधन नहींहै
इसलिये हेअर्जुन तुम्हेस्वधर्मरूपयुद्धकरनाउचितहै ॥३१॥

मू० ॥ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृत
म् ॥ सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमी
दृशम् ॥ ३२ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन क्षत्रीराजा प्रयत्न
और प्रबन्ध से बिना स्वर्ग का साधन रूप धर्मयुद्ध के प्राप्त
होने से आनन्द ही होते हैं ॥ ॥ ३२ ॥

मू० ॥ अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करि
ष्यसि ॥ ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पाप
मवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन जो तू इस
धर्मरूप युद्ध को न करेगा तो अपने धर्म और कीर्त्ति को
नष्ट करके पापी कहलावेगा ॥ ३३ ॥ ॥ ३३ ॥

मू० ॥ अकीर्त्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति
तेऽव्ययाम् ॥ संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मर
णादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन सम्पू न
र्ण धर्मात्मा बहुत दिन तक तुम्हारी अकीर्त्ति कहेंगे
और श्रेष्ठ पुरुषों को अकीर्त्ति की प्राप्ति मरने से भी अधिक है

मू० ॥ भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः
॥ येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघ
वम् ॥ ३५ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन भीष्म द्रोणादिक म
हारथी तुम्हें भय से संग्राम से लौट गया मानेंगे और क्रोध
॥ समझेंगे ॥ ३५

मू॰॥ अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यंति तवाहिताः॥ निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरंनुकिंम॥ ३६॥ टी॰॥ औरदुर्योधनादिक शत्रु तुम्हारे प्राक्रमकी निन्दाकरतेहुए नकहनेयोग्य अनेकप्रकारकीबातें कहैंगे फिर इससेबढकर और क्यादुःखहै

मू॰॥ हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गं जित्वावाभोक्ष्यसेमहीम॥ तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धायकृतनिश्चयः॥ ३७॥ टी॰॥ हे अर्जुन जो तू युद्धमें मारा जावेगा तो स्वर्ग पावेगा और जो जीतेगा तो इस पृथ्वी की राज्य को भोगेगा ऐसा निश्चय करके तू युद्ध केलिये उठ खड़ा हो॥ ॥३७॥ ॥३७॥

मू॰॥ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभाऽलाभौजयाजयौ॥ ततोयुद्धाययुज्यस्व नैवंपापमवाप्स्यसि॥ ३८॥ टी॰॥ सुख दुःख लाभ हानि हार जीन को बराबर समझकर युद्ध करनेसे पाप नहोवेगा।३८॥

मू॰॥ एषाऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमांशृणु॥ बुद्ध्यायुक्तोययापार्थ कर्मबंधंप्रहास्यसि॥ ३९॥ टी॰॥ हे अर्जुन हमने जो तुमसे पूर्वोक्त ब्रह्मविषयक बुद्धियोग कहा इसबुद्धिमें युक्त

होकर तू कर्मबन्धको त्याग करेगा ॥ ३९ ॥ ॥ ३९ ॥

मू० ॥ नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥ टी० ॥ ज्ञानयुक्त निष्काम कर्मयोगमे कर्मके फलका नाश नही होता और बैगुण्य दोषभी नही लागता इसलिये निष्काम कर्म थोडाभी महान भयसे रक्षा करलेना है ॥ ॥ ४० ॥ ॥ ४० ॥

मू० ॥ व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ॥ बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन कल्याण मार्गमे आत्मज्ञानकी निश्चयरूप बुद्धि कही है और सकाम पुरुषोंकी बुद्धियां अनेक शाखावाली अनंत है ॥ ४१ ॥

मू० ॥ यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ॥ वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन विचारहीन पुरुष अविचारसे रमणीक कर्मकांडरूप वेदबाणीमें प्रीत मानते हैं ॥ ४२ ॥ ॥ ४२ ॥

मू० ॥ कामात्मनः स्वर्गपरा जन्मकर्मफल

प्रदम ॥ क्रियाविशेषबहुलाम्भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥ टी॰ ॥ सोबेदबाणी अग्निहोत्रादिक कर्मोंको बिस्तार प्रति पादन करनेतथा भोगैश्वर्यओर जन्मकर्मदेनेवाली है ॥ मू॰ ॥ भोगैश्वर्यप्रशक्तानांतयापहृतचेतसाम ॥ व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौनबिधीयते ॥ ४४ ॥ टी॰ ॥ तिसबाणीकेकहनेवालेपुरुष कर्मकेफलभोगैश्वर्यमें प्रीतिमानहोतेहैं इसलियेज्ञानके उत्तम फलको नहीजानेते ऐसेमूर्खोंकेअन्तःकरणोंमें ब्रह्मसमाधीमेंअस्थितहोनेवाली व्यवसायात्मिका बुद्धिनहीउत्पन्नहोती ॥ ४४ ॥

मू॰ ॥ त्रैगुण्यबिषयाबेदा निस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥ निर्द्वंदो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान ॥ ४५ ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन कर्मकाण्डरूपबेदभी त्रैगुण्यकोउत्पन्नकरनेवालेहैं इसलियेतूतिनबेदों और द्वन्द्वधर्मोंसे तथा योगक्षेमकी इच्छासे रहितहोकर आत्मवानहो ॥ ४५ ॥

मू॰ ॥ यावानर्थउदपानेसर्वतः संप्लुतोदके ॥ तावान्सर्वेषुबेदेषुब्राह्मणस्य बिजानतः ॥ ४६ ॥ टी॰ ॥ जैसे बडे अथवा छोटे नदीतालाबादिकोंमेंसे प्रयोजनमात्रहीजललियाजाताहै वैसेहीबेदवेत्ता ब्राह्मणादिकों को

सम्पूर्णबेदादिकोंमें मोक्षमार्गहीग्रहणकरनाउचितहै (गूढा
र्थयह + गीतासम्पूर्णबेदोंकासारहै) ॥ ४६ ॥

मू॰ ॥ कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन
॥ माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि ॥ टी
का॰ ॥ हेअर्जुन तुम्हाराकर्महीकरनेमेंअधिकारहै कर्मोंको
नकरना अथवाकर्मोंकेफलकीइच्छाकरनाउचितहैनहीं ॥ ४७ ॥

मू॰ ॥ योगस्थः कुरुकर्माणि संगंत्यक्त्वाधनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते ॥
टी॰ ॥ हेअर्जुन तूफलकीप्राप्ति अप्राप्तिमेंहर्षविषादसे र
हितहो कर्मोंकोकर ऐसेहीकर्मोंको क[...]योग कहतेहैं ॥ ४८ ॥

मू॰ ॥ दूरेण[...]र्म बुद्धि[...]योगाद्धनंजय ॥ बु
द्धौशरणमन्विच्छ कृपर[...]ाः फलहेतवः ॥ टी॰
॥ हेअर्जुन अत्यन्तदूरताकेकारण[...]निष्कामकर्मोंसे सकामक
र्मतुच्छहैं इसलियेतू निष्कामकर्म[...]करनेकीइच्छाकर
औरसकामपुरुषोंको कृपणजान[...]॥ ४९ ॥

मू॰ ॥ बुद्धियुक्तोजहातीह उभेसुकृत[...]दुष्कृते ॥ त
स्माद्योगाययुज्यस्वयोगः कर्मसुकौशलम् ॥
टी॰ ॥ हेअर्जुनसमत्वबुद्धियुक्त कर्मकारीपुरुष पापपुण्य

दोनोंसे अलगरहतेहैं इसलिये तूभीस बुद्धियोगकेलिये उपा
यकर औरसो बुद्धियोगही तिनकर्मोंमें बुद्धिमानीहै ॥५०॥

मू० ॥ कर्मजंबुद्धियुक्ताहि फलंत्यक्त्वा मनी
षिणः ॥ जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदंगच्छंत्यनाम
यम् ॥ ५१ ॥ टी० ॥ हेअर्जुनसमत्व बुद्धियुक्त पुरुषकर्मों
केफलोंको त्यागकर आत्मसाक्षात्कार होतेहुए जन्मरूप बं
धनसे छूटजातेहैं इसलिये तूभीऐसा हो ॥५१॥

मू० ॥ यदातेमोहकलिलंबुद्धिर्व्यतितरिष्यति
॥ तदागंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्यच ॥ टी
का० हेअर्जुन जि[illegible]समय तुम्हारा अंतःकरण अविवेकजन्य
ममतारूपपापको त्यागकरेगा उसीसमय सुननेयोग्य अथ
[illegible] सुनेहुए [illegible] कोप्राप्तहोवेगा ॥५२॥

मू० ॥ श्रुतिविप्रतिप[illegible]ाते यदास्थास्यति निश्च
ला ॥ समाधावच[illegible]ाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्य
सि ॥ टी० ॥ हेअ[illegible]र्जुन पूर्वकालमें बहुतप्रकारके फलोंकेसु
ननेसे शंसयकोप्र[illegible]प्तहुई तुम्हारी बुद्धि जिससमय आत्मामें नि
श्चलहोगी उ[illegible]सीसमय तुमजीव ब्रह्मके अभेदको जानोगे ॥५३॥

मू० ॥ अर्जुनउवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य काभाषास
माधिस्थस्यकेशव ॥ स्थितधीः किंप्रभाषेत

किमासीत ब्रजेत किम ॥टी०॥ हे केशव समाधि में
स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष का क्या लक्षण है और वह किस प्रकार बो
लता व इन्द्रियों को रोक्ता हुवा बिषयों को भोग करता है ॥५४॥

मू० ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ प्रजहाति यदा कामा
न् सर्बान् पार्थ मनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः
स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥टी०॥ जिस समय समा
धिस्थ पुरुष अपने मन में स्थित सम्पूर्ण कामना और कर्मों को
त्याग करके आत्मा में आत्मा ही करके तृप्त होता है तिस
काल में वह पुरुष स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ॥५५॥

मू०॥ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु बिगतस्पृहः
॥ बीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥टी
का॥ जिस का मन दुःखों में दुःखित नहीं होता और बिषय सुखों
की इच्छा नहीं करता और जिसके राग भय क्रोध नष्ट होगये हैं ऐ
से मननशील पुरुष को स्थितप्रज्ञ कहते हैं ॥५६॥

मू० ॥ यः सर्बत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं
॥ नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥
टी०॥ जो विद्वान पुरुष देहादिक सम्पूर्ण पदार्थों में प्रीति नहीं
करता और प्रिय व अप्रिय बिषयों में आनंद और दुःख से रहि

तहै उसे स्थिर बुद्धि कहतेहैं ॥ ५७ ॥ ॥ ५७ ॥

मू० ॥ यदासंहरतेचायंकूर्मोगानीवसर्बशः॥इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ टी० ॥ जैसेककुवा सिर पादादिक सम्पूर्ण अंगोंको संकोचलेताहै ऐसे हीजिससमय यहबिद्वानपुरुष अपनीइन्द्रियोंको संकोच करताहै तिससमय उसकीबुद्धि स्थिरहोतीहै ॥ ५८ ॥

मू० ॥ बिषया बिनिवर्तंते निराहारस्यदेहिनः॥ रसबर्यंरसोप्यस्यपरन्दृष्ट्वानिवर्तते ॥ ५९ ॥ टी० ॥ इन्द्रियोंकेबिषै सुखभोगकरनेमे असमर्थरोगी पुरुषभी सम्पूर्ण बिषयोंसे निवृत्त होजाताहै परन्तु बिषयबासना उसके मन मेरहतीहै लेकिन [illegible] पुरुष बिषयबासनोंसेभी रहित होजातेहैं ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ५९ ॥ ॥ ५९ ॥

मू० ॥ यततोह्यपि कौंतेय पुरुषस्यबिपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभंमनः॥ टी० ॥ हे अर्जुन आत्म ज्ञानबिना बिषयानुराग निवृत्त नहीहोसक्ता क्योंकि बुद्धिकेस्थिरताकेवास्तेजत्नकारीपुरुषोंकोभी अत्यन्त बलवान इन्द्रियां बिगाड़देतीहैं ॥ ६० ॥ ॥ ६० ॥

मू० ॥ तानि सर्बाणिसंयम्य युक्त आसीतमत्परः

॥ वशेहियस्येंद्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥

॥६१॥ टी०॥ हमाराअनन्यभक्त तिनसम्पूर्ण इन्द्रियोंको

आधीनकरके स्थिरमनवालाहोताहै और जिसपुरुषकी इन्द्रि

यांआधीनहैं उस्कीबुद्धिस्थिरहोतीहै ॥६१॥

मू० ॥ ध्यायतोविषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते

॥ संगात्संजायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते

॥टी०॥ शब्दादिकविषयोंको मनमें ध्यानकरतेहुए लोगों

कातिनविषयोंमेंसंगउत्पन्नहोताहै तिससंगसेकामना और

कामनासेक्रोध ॥६२॥ ॥६२॥

मू० ॥ क्रोधाद्भवतिसंमोहः संमोहात्स्मृतिवि

भ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणा

श्यति ॥टी०॥ क्रोधसेसंमोह संमोहसेस्मृतिभ्रंश औ

रस्मृतिभ्रंससेबुद्धिनाशहोतीहै और बुद्धिनाशहोनेसे वह

आपभीनाशहोजाताहै ॥ ॥६३॥

मू० ॥ रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन्

॥ आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति

॥टी०॥ मनकोआधीनरखनेवाला पुरुष रागद्वेषसेरहित इं

द्रियोंकेविषयोंको भोगकरताहुवा चित्तकीस्वच्छताको प्राप्त

होताहै ॥ ६४ ॥ ॥ ६४ ॥ ॥ ६४ ॥

मू॰॥ प्रसादे सर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते॥ प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ टी॰॥ चित्तनिर्मलहोनेसे इसविद्वानसन्यासीके सम्पूर्ण दुःखनष्टजाते हैं इसलिये उसप्रशन्नचित्त पुरुषकीबुद्धिशीघ्रहीस्थिरहोतीहै ॥

मू॰॥ नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना॥ नचाभावयतःशांतिरशांतस्यकुतःसुखम्॥ टी॰ अजितचित्तपुरुषके आत्मविषयकबुद्धिअसनहीनही होती तिसबुद्धिकेबिनाभावनाभावनाबिनाशांति और शांति बिनासुखनही प्राप्त नहीहोता ॥ ६६ ॥ ॥ ६६ ॥

मू॰॥ इन्द्रियाणांहिचरतांयन्मनोनुविधीयते॥ तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवांभसि॥ टी॰॥ साधकपुरुषकोएकइन्द्रिका। बिषयभीजलमे चलतीहुई नाव कोबिरुद्धपवनकीतरह खेदकरदेताहै ॥ ६७ ॥

मू॰॥ तस्माद्यस्यमहाबाहो निगृहीतानिसर्वशः॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता॥ टीका॰॥ इसलियेहेअर्जुन जिसपुरुषकीसम्पूर्णइन्द्रियां बिषयोंसे निवृत्तहोचुकीहैं उसीकीबुद्धिस्थिरहोसक्तीहै ॥ ६८ ॥

मू॰॥ यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्तिसंयमी

॥ यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ टीका ॥ जिस ज्ञानरूपी दिनमें सम्पूर्ण प्राणी सोते हैं उसमें तत्त्वदर्शी पुरुष जागते हैं और जिस अज्ञानरूपी रात्रि सम्पूर्ण प्राणी जागते हैं तिसमें तत्त्वदर्शी पुरुष सोते हैं ॥ ६९ ॥ ॥ ६९ ॥

मू० ॥ आपूर्य्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ॥ तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्बे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ टी० ॥ जिस प्रकार बड़ी प्रतिष्ठावाले और अचल समुद्रमें सम्पूर्ण नदियोंके जल प्रवाह जाते हैं वैसे ही स्थितप्रज्ञ पुरुषको सम्पूर्ण शब्दादिक बिषय प्राप्त होते हैं तिन बिषयोंको स्थितप्रज्ञ पुरुष भोग करता हुवा शांतिको प्राप्त होता है लोकनकामना ... पुरुष शांतिको नही प्राप्त होता ॥ ७० ॥

मू० ॥ बिहाय कामान्यः सर्बान्पुमांश्चरति निस्पृहः ॥ निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ टी० ॥ जो पुरुष ममता इच्छा अहंकारसे सहित सम्पूर्ण कामोंको त्यागकर बिचरता है सो स्थितप्रज्ञ पुरुष शांतिको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

मू० ॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनं प्राप्य बिमुह्यति ॥ स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्बाणमृच्छति ॥ टी० ॥ हे अर्जुन ब्रह्ममें स्थित पुरुष मोहको नही प्राप्त होता

इसलिये अन्त्य अवस्थामें वहपुरुष ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होताहै

।। ।।७२।। ।।७२।। ।।७२।।

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीभगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्बादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः २ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।० ।।२।। सुभमस्तु

हरि → हर



श्रीगणेशायनमः ऽध्याय ३

मू० ॥ अर्जुनउवाच ॥ ज्यायसीचेत्कर्मणस्ते मता
बुद्धिर्जनार्दन ॥ तत्किं कर्मणि घोरे मांनियोजय
सिकेशव ॥ १ ॥ टी० ॥ हेभगवनजवकि निष्काम कर्म योग
से आत्मबिषयक बुद्धिको आपश्रेष्ठ समझतेहो तोफिर पापरूप
युद्धकरनेको हमे क्योंकहतेहौ ॥ १ ॥

मू० ॥ व्यामिश्रेणेववाक्येन बुद्धिंमोहयसीवमे ॥ त
देकंवद निश्चित्य येन श्रेयोह माप्नुयाम् ॥ २ ॥ टी०
हे भगवनमिली हुईबातें कहकरहमारीबुद्धिमें मोहक्योंउत्पन्नकर
तेहो दोनोमेसे एकजोहमारेलिये कल्याणकारीहो निश्चय करकेकहो

मू० ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ लोकेऽस्मिन् द्विबिधा
निष्ठा पुराः प्रोक्ता मयानघ ॥ ज्ञानयोगेन सांख्या
नांकर्मयोगेनयोगिनाम ॥ ३ ॥ हे निष्पाप अर्जुन पूर्वी
क्त अध्यायमें हमनेदो प्रकारकी निष्ठा बरानि किया तत्ववेत्ता
पुरुषोंको ज्ञानयोग और कर्मके अधिकारियोंको कर्मयोग ॥ ३ ॥

मू० ॥ नकर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते ॥
नचसन्यस्यनादेव सिद्धिं समाधिगच्छति ॥ ४ ॥
टी० अधिकारी पुरुषोंको निष्कामकर्मयोगके बिनाकेवल
सन्याससे ज्ञाननहीहोसक्ता  ॥ ४ ॥

मू०॥ नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत॥ का
र्य्यतेह्यवशः कर्मसर्वःप्रकृतिजैर्गुणैः॥ ५॥ टी०
कोईभीअज्ञानीपुरुषबिनाकर्मकिये क्षणमात्रभीनहीरहसक्ता क्यों
कि स्वभावजन्यसत्वादिक गुण ज़बर्दस्ती सम्पूर्णअज्ञानीयोंसे
लौकिक वैदिक कर्मकरायाहीकरतेहैं ——→॥५॥

मू०॥ कर्मेंद्रियाणि संयम्य यआस्तेमनसास्मरन्॥
इंद्रियार्थानिबिमूढात्मा मिथ्याचारःसउच्यते॥६॥
टी०॥ जोपुरुषइंद्रियोंकासंजमतोकरताहै लेकिनमनकीअसुद्ध
ताकेकारणसे बिषयसुखोंमे मनप्रीतिमानेहै उसेमिथ्याचारी स
मझना चाहिये॥६॥ ——→॥६॥←—— ॥६॥

मू०॥ यस्त्विंद्रियाणि मनसानियम्यारभतेऽर्जु
न॥ कर्मेंद्रियैः कर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते॥
टी०॥ जोपुरुषमनसेमन श्रोत्रादिकइन्द्रियोंको रोककर फ
ल कीइच्छासेरहित होनिष्कामकर्मोंकोकरताहै वहपुरुषअत्य
न्तश्रेष्ठहै॥ ॥७॥ ॥७॥

मू०॥ नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः॥
शरीरयात्रापिचतेनप्रसिद्ध्येदकर्मणः॥८॥ टी०॥
कर्मोंकेबिनाशरीरयात्राभीनहीनिवहती इसलियेकर्मोंकेनकरने
सेकर्मकरनाहीश्रेष्ठहै॥ ॥८॥ ॥८॥

मू०॥ यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोयंकर्मबंधनः
॥ तदर्थंकर्मकौंतेयमुक्तसंगःसमाचर ॥ ९॥

टी०॥ परमेश्वरके आराधनके सिवाय कर्म लोगोंको इसलो
कमें बंधायमानकरतेहैं इसलिये हे अर्जुन तुम्हे भगवान
के प्रशन्नार्थ कर्मकरनाही उचितहे ॥ ॥ ९॥

मू०॥ सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः
॥ अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोस्त्विष्टकामधुक्॥

टी०॥ हे अर्जुन ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञके अधिकारी प्र
जाओंको उत्पन्नकरके यहकहाकि तुम यज्ञियांकरके मन वां
छित फलोंको प्राप्तहोओ ॥१०॥ ॥१०॥

मू०॥ देवान्भावयतानेनतेदेवाभावयंतुवः॥ पर
स्परंभावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ टी०॥ हे अ
धिकारीप्रजा तुमयज्ञादिरूपकरके इंद्रियादिकदेवताओंको
संतुष्टकरो तोवे देवता तुम्हें संतुष्टकरेंगे इसप्रकारसे तुमदो
नोंका परस्पर उपकार होवेगा ॥११॥

मू०॥ इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यंतेयज्ञभावि
ताः॥ तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः॥

टी०॥ यज्ञोंसेसंतुष्टहुए देवता तुम्हेंमनवांछित भोगदेवेंगे दे
वतोंके दियेहुये भोग जोपुरुष उन्हेनदेकर केवल आपही भोग

नाहैसो चोरहै ॥ १२ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १२ ॥

मू॰ ॥ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंतेसर्वसर्वक ल्बिषैः ॥ भुंजतेतत्वघंपापायेपचंत्यात्मकार णात् ॥ १३ ॥ टी॰ ॥ जोपुरुषयज्ञमेबचेहुएअन्नकोभो जनकरतेहैं उनकेसम्पूर्णपापनष्टहोजातेहैं औरजोकेवलअ पनेही लियेभोजनबनातेहैं वेपुरुषपापहीभोजनकरतेहैं ॥ १३ ॥

मू॰ ॥ अन्नाद्भवतिभूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥ य ज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ टी॰ ॥ अन्नसेशरीरउत्पन्न होताहै औरअन्नजलसे औरयज्ञादिरूपधर्मों से जलबरसताहै ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १४ ॥

मू॰ ॥ कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥ तस्मात्सर्वगतंब्रह्म नित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ टी॰ ॥ अग्निहोत्रादिककर्मबेदसेउत्पन्नहुएहैं औरबेदपरमात्मा देवसे इसलियेनाससे रहित सम्पूर्ण अर्थोंका प्रकाशक बेदध र्मरूप यज्ञोंमें स्थिररहताहै ॥ १५ ॥

मू॰ ॥ एवंप्रवर्तितंचक्रं नानुवर्तयतीहयः ॥ अघा युरिंद्रियारामो मोघम्पार्थसजीवति ॥ १६ ॥ टी॰ इसलोकमेंजोलोग इसप्रकारचक्रकी प्रवृत्तिनहीमानतेहैं वे इन्द्रियारामपापी वृथाजीतेहैं ॥ १६ ॥

मू॰ ॥ यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥
आत्मन्येवचसन्तुष्टस्तस्यकार्यंनबिद्यते ॥ १७ ॥

टी॰ ॥ जोपुरुषआत्मामेप्रीतिमान औरआत्माहीमे तृ
प्तवसंतुष्टहै उसेकुछभीकार्यकर्तव्य नहींहै ॥ १७ ॥

मू॰ ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचा
स्यसर्बभूतेषुकश्चिदर्थब्यपाश्रयः ॥ १८ ॥ टी॰ ॥
जिसबिद्वानपुरुषको सम्पूर्णभूतोंसे कुछभी प्रयोजनकासम्ब
न्धनहीहै उसेकर्मोंकेकरने अथवानकरनेसे भी कुछप्रयोजन
नहीहै ॥

मू॰ ॥ तस्मादसक्तः सततंकार्यंकर्मसमाचर ॥ अ
सक्तोह्याचरन्कर्म परमाप्नोतिपूरुषः ॥ १९ ॥ टी॰
हे अर्जु[illegible]से रहित कर्मकारी पुरुष मोक्षको प्राप्त
होतेहैं इसलिये तुम्हेंभी फलकी[illegible]से रहितहो नित्य
नैमित्यककर्म अवश्य करना चाहिये ॥ ॥ १९ ॥

मू॰ ॥ कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिताजनकादयः
॥ लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ टी॰
पूर्वकालमे जनकादिराजा कर्महीकरके ज्ञानकी प्राप्तिहुएहैं इ
सलिये तुमभी ज्ञानकेलिये निष्काम कर्मकरो औरजो ज्ञानी
होआतो लोकसंग्रहकेलिये कर्मकरो ॥ २० ॥

मू०॥ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः॥ स
यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ २१॥ टी
का॥ श्रेष्ठ पुरुष जिस्को प्रमाण करते हैं उसे ही सब लोग प्रमाण करते
हैं इसलिये श्रेष्ठ पुरुष जिन कर्मों को करते हैं उन्हे ही दूसरे मनुष्य करते हैं ॥२१॥

मू०॥ नमे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन॥
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ २२॥ टी०
हे अर्जुन हमें तीनो लोक में हमे किसी अप्राप्त फल की कुछ भी इच्छा न
ही है इसलिये कर्म करने की भी आवश्यक्ता नहीं है परन्तु हम कर्म करते ही हैं

मू०॥ यदि ह्यहं नवर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः॥ मम
वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ २३॥ टी०॥
क्योंकि कदाचित् हम आलस्य में [illegible]त होकर अच्छे कर्मों में प्रवृत्ति न
होवे तो कर्म के अधिकारी मनुष्य हमारी राह पर चलना अंगीकार करें।

मू०॥ उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम॥ सं
करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ २४॥
टी०॥ जो मैं इस [illegible] अच्छे कर्म न करूं तो सम्पूर्ण लोक नाश हो जावें तो
मैं ही वर्णशंकर [illegible]के सर्व प्रजा को नष्ट करने वाला ठहरूं ॥२४॥

मू०॥ सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वंति भारत॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम॥

टी॰ जैसे अज्ञानीपुरुष कर्मके फलोंमे आसक्त होनेके कारण अच्छे प्रकारसे कर्मोंको करते हैं तैसेही लोकसंग्रहके लिये फलकी इच्छासे रहित होकर विद्वान्पुरुषभी अच्छे प्रकारसे कर्म करैं ॥ २५ ॥

मू॰ ॥ नबुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥ योषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

टी॰ ॥ हे अर्जुन विद्वानपुरुष कामनावालोंकी तरह कर्मकरनेमें आसक्त न होवैं किन्तु अविवेकी पुरुषोंसे कर्मकरानेके लिये फलकी इच्छासे रहित हो आदरसमेत सुभकर्म करै ॥ २६ ॥

मू॰ ॥ प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

टी॰ ॥ मायाके सत्वादिक गुणही सम्पूर्ण कर्म करते हैं लेकिन अज्ञानी अर्थात् मूर्ख अपनेको कर्मोंका कर्त्ता मान लेते हैं ॥ २७ ॥

मू॰ ॥ तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ गुणा गुणेषु वर्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥ टी॰ हे अर्जुन गुण कर्म विभागके यथार्थस्वरूपके जाननेवाले विद्वान पुरुष तो इन्द्रियादिक करणही रूपादिक विषयोंमें प्रवृत्त होते हैं असंग आत्मामें कर्तृत्व नहीं है ऐसा मानते हैं ॥ २८ ॥ ॥ २८

मू॰ ॥ प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ॥ ता

नकृत्स्नविदोमंदान्कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥२९॥

टी० जोपुरुषप्रकृतिकेगुणोंमें मोहितहैं तिनअज्ञानियोंको आ

त्मवेत्ता बिद्वानपुरुषकर्मसेरहित और अपनाउपदेशनहीकरते ॥२९॥

मू० ॥ मयिसर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥

निराशीर्निर्ममोभूत्वायुध्यस्वबिगतज्वरः ॥ टी० ॥

हेअर्जुनतूअध्यात्ममें युक्तचित्तकरके और कामनाममता शोकसेरहित

हो सम्पूर्णकर्मोंको परमेश्वरमेंअर्पणकरतेहुए युद्धकर ॥३०॥

मू० ॥ येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठंतिमानवाः ॥ श्रद्धा

वंतोऽनसूयंतोमुच्यंतेतेऽपिकर्मभिः ॥ टी० ॥ जोमनुष्य

असूयादोषसेरहित श्रद्धावानहो हमारेइसनित्यमतको अंगीकारकरते

हैं वेपुण्यपापसे अलगरहतेहैं ॥३१॥

मू० ॥ येत्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मेमतम् ॥ स

र्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ॥ टी० ॥ जोपु

रुषदोषदृष्टिसे हमारेइसपूर्वोक्तमतको अंगीकारनहींकरतेवे दुष्टचित्त

वाले सम्पूर्णज्ञान और पुण्योंसे भ्रष्टहैं ॥३२॥

मू० ॥ सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥ प्रकृ

तिंयांतिभूतानि निग्रहःकिंकरिष्यति ॥ टी० ॥ जबकि

ज्ञानवान और अज्ञानी सबअपनेस्वभावकेअनुसार चेष्टाकरतेहैं तो

हमारा रोकना क्याकरेगा ॥३३॥

मू॰ ॥ इंद्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थि
तौ ॥ तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपंथिनौ ॥

टी॰ हेअर्जुन इन्द्रियों और इन्द्रियोंकेबिषय नियमकेअनुसार
हीहैं परन्तुबुद्धिमानपुरुष बिषयादिकोंमेंरागद्वेष न करें क्योंकि
येसम्पूर्ण प्राणियोंकेशत्रुहैं अर्थात्जीवको बन्धनमेंडालनेवालेहैं ॥३४॥

मू॰ ॥ श्रेयान्स्वधर्मोबिगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठिता
त् ॥ स्वधर्मेनिधनंश्रेयः परधर्मोभयावहः ॥ टी॰
सम्पूर्णअनुष्ठानकियेहुए पराये धर्मसे अंगहीन अपनाधर्म अ
त्यन्तश्रेष्टहै औरपरायाधर्मतोदुःखहीउत्पन्नकरनेवालाहै ॥३५॥

मू॰ ॥ अर्जुनउवाच ॥ अथकेनप्रयुक्तोयंपापंचर
तिपूरुषः ॥ अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिवनि
योजितः ॥ टी॰ ॥ हेभगवन पापकरनेकी इच्छानहोनेकी द
शामेंभीजबर्दस्ती तिनकर्मोंमेंकौन प्रवृत्तिकरादेताहै ॥३६॥

मू॰ ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ कामएषक्रोधएषरजो
गुणसमुद्भवः ॥ महाशनोमहापाप्माविद्धेनमिह
वैरिणम् ॥३७॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनअनर्थमें प्रवृत्तिकराने
वाला कामहीहै जिस्कीरजोगुणसेउत्पत्तिहै औरवहीफिरक्रोध

होजाताहै ऐसे अत्यन्ताहारी महापापी कामको तू संसारका सत्रु ही जान ॥

मू॰ ॥ धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥ यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

टी॰ ॥ जैसे अग्निको धूम्र और दर्पणको मल व गर्भको झिल्ली घेरेरहती है ऐसेही ज्ञानके साधनोंको काम घेरे रहता है ॥ ३८ ॥

मू॰ ॥ आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥ कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ टी॰ ॥

अग्निकी तरह संतुष्ट होनेसे रहित ज्ञानका घेरनेवाला यह काम (बिषयबासना) ज्ञानियोंका तो नित्यही शत्रु है ॥ ३९ ॥

मू॰ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥ एतैर्बिमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ टी॰ ॥

इन्द्री मन बुद्धि यह तीनो इसकामके अधिष्ठान (स्थान) हैं क्योंकि इन्हींके द्वारा यह काम देहाभिमानी जीवको अनेक प्रकारकी मोह उत्पन्न करता है ॥ ४० ॥

मू॰ ॥ तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥ पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानबिज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

टी॰ ॥ हे अर्जुन तू पहले इन्द्रियोंको बशकरके फिर ज्ञानबिज्ञानके नाशकरनेवाले सम्पूर्णपापोंके मूल कामको नाशकर ॥ ४१ ॥ ॥ ४१ ॥

मू॰ ॥ इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥ टीका ॥ शरीरसे श्रेष्ठ इन्द्रियां इन्द्रियोंसे मन मनसे बुद्धि और बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा है ॥४२॥ ॥४२॥ ॥४२॥

मू० ॥ एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

टी० ॥ हे अर्जुन इस प्रकार बुद्धिसे श्रेष्ठ आत्माको जान और मन को निश्चयरूप बुद्धिसे स्थिर करके दुःखकरके बस होनेके योग्य तृष्णा रूप काम शत्रुको नाश कर ॥४३॥ ॥४३॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु



मैंने

।श्रीगणेशायनमः॥श्रीनारायण॥

श्रीभगवानुवाच ॥मू॰॥ इमंविवस्वतेयोगंप्रोक्तवानह
मव्ययम् ॥ विवस्वान्मनवेप्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवी
त्॥१॥टी॰॥ हेअर्जुनँनाशसेरहित (अन्तरभूतज्ञानयोग
संयुत) इसकर्मयोगकोपहिले सूर्य्यसेकहाथा औरसूर्य्यनेअ
पनेपुत्रमनुसे औरमनुनेअपनेपुत्र इक्ष्वाकुसेकहाहै ॥१॥

मू॰॥ एवंपरंपराप्राप्तमिमंराजर्षयोविदुः॥ सका
लेनेहमहतायोगोनष्टःपरंतप॥२॥॥२॥टी॰॥
इसप्रकारपरम्पराकरकेराजऋषियोंनेसुना परन्तुअबबहुतदिन
से नाशवन्तहोरहाहै ॥ ॥२॥ ॥२॥

मू॰॥ सएवायंमयातेऽद्ययोगःप्रोक्तःपुरातनः॥
भक्तोऽसिमेसखाचेतिरहस्यंह्येतदुत्तमम्॥
टी॰ हेअर्जुनतूहमाराभक्त औरसखाहै इसलिये तमनेअत्यन्तगोप्य
औरउत्तमज्ञानको तुमसेइससमयबरानि किया ॥३॥

मू॰॥ अर्जुनउवाच ॥ अपरंभवतोजन्म परंजन्मवि
वस्वतः॥ कथमेतद्विजानीयां त्वमादौप्रोक्तवा
निति॥टी॰॥ हेभगवन आपकेजन्मतोथोडेहीदिनहुएहु
वाहै औरसूर्य्यकाजन्मतोसृष्टिकेआदिकालमेंहुवाथा इसलिये

आपने इस ज्ञानयोग को जो सूर्य्य से कहा उसे मैं किस तरह निश्चय करूं ॥ ४ ॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥ तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ टी० ॥ हे अर्जुन हमारे तुम्हारे बहुत से जन्म हो चुके हैं और हम तिन सब जन्मों को जानते हैं लेकिन तुम नहीं जानते ॥ ५ ॥

मू० ॥ अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ टी० ॥ हे अर्जुन मैं जन्म मरण से रहित सम्पूर्ण भूतों का ईश्वर हूं लेकिन अपनी माया के आश्रय से जन्मवाला कहा जाता हूं ॥ ६ ॥

मू० ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन जब जब धर्म की हानि और अधर्म की बढती होती है तिस तिस काल में मैं परमेश्वर देह धारण करता हूं ॥ ७ ॥

मू० ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥ धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ टी० ॥ पापियों के मारने और साधुओं की रक्षा करने के लिये व धर्म स्थापण करने को मैं युग युग में अवतार लेता हूं ॥ ८ ॥ ॥ ८ ॥

मू० जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥ त्य

त्त्का देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥टी०॥
जो पुरुष हमारे दिव्य (परमेश्वरी) जन्म कर्मों को जथार्थ जानते हैं वे इस शरीर को त्याग कर हमें प्राप्त होते हैं इसलिये फिर उनका जन्म नहीं होता ।९।

मू०॥ बीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः
॥बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥टीका॥ बहुत से पुरुष पापों से तथा राग भय क्रोध से रहित मुझ में चित्त वाले हो और मेरी शरण को प्राप्त होते हुए ज्ञान रूप तप करि के मुझे प्राप्त हुए हैं ॥

मू०॥ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्
॥ मम बर्त्मानुबर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्बशः ॥टी०
हे अर्जुन जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करते हैं मैं उसी प्रकार उनपर कृपा करता हूं कर्म के अधिकारी सम्पूर्ण मनुष्य भी मेरे ही भजन में बर्तमान हैं ॥११॥

मू०॥ कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवता ॥
।क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥टी०
इस लोक में कामना वाले मनुष्य इन्द्रादिक देवतों की पूजा करते हैं क्यों कि उनकी पूजा से शीघ्र फल प्राप्त होते हैं ॥१२॥

मू०॥ चातुर्बर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म बिभागशः॥
तस्य कर्त्तारमपि मां बिद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥टी०
मैं गुण कर्मों के बिभाग से चार वर्णों को उत्पन्न करता हूं लेकिन मैं अव्यय रूप हूं

अर्थात् कर्मोंमें मेरी आसक्ति नहीहै इसलिये तू मुझे अकर्त्ताही जान ॥ १३ ॥

मू० ॥ न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ॥
इति मां योभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते ॥ टी० ॥
हे अर्जुन मैं तृष्णा और फलकी इच्छासे रहित हो कर्म करता हूं इसलिये वे मु
झे लिपायमान नही होते और जो पुरुष मुझे इस प्रकार जानताहै उसे भीक
र्म विन्धायमान नही होते ॥ १४ ॥ ॥ १४ ॥

मू० ॥ एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ टी० ॥ हे
अर्जुन इस प्रकार आत्माको अकर्त्ता अभोगता जानकर पूर्वकालमें
मुमुक्षुवोंने कर्म कियाहै इसलिये तू भी कर्मही कर ॥ १५ ॥

मू० ॥ किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः
॥ तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशु
भात् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन कर्म अकर्मके भेदमें बुद्धिमानोंकोभी मोह
होताहै इसलिये हम तुझसे तिनके भेदको कहतेहैं जिसे जानकर तू सं
सारसे मुक्त होवेगा ॥ १६ ॥

मू० ॥ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्म
णः ॥ अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः
टी० ॥ हे अर्जुन कर्म (करने योग्य कर्तव्य) अकर्म (परमेश्वरके प्र
सन्नतार्थ निष्काम कर्म) विकर्म) निषिद्ध कर्म) का तत्त्व अवश्य जान

नाचाहियेक्योंकि इनका तत्व अत्यन्त कठिनहै ॥ १७ ॥

मू॰ ॥ कर्मण्यकर्मयः पश्येदकर्मणिच कर्मयः ॥
सबुद्धिमानमनुष्येषु सयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत ॥

टी॰ हे अर्जुन जोपुरुष कर्ममें अकर्मको और अकर्म मे कर्म को देखताहै वहीसम्पूर्ण मनुष्योंमें बुद्धिमानतथा योगयुक्त और सम्पूर्ण अच्छे कर्मोंका करने वालाहै (आत्मबोधमें स्थितहोकर कर्म करनेको अकर्म का कर्ममें देखताहै और निष्काम कर्मयोगसेही निजस्वरूप अर्थात् भगवतकी प्राप्तिहोगी ऐसेबोधयुक्त निष्काम कर्मयोगमें जोस्थितहै वही अकर्ममें कर्मका देखताहै) ॥ १८ ॥

मू॰ ॥ यस्यसर्वेसमारंभाः कामशंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पंडितंबुधाः ॥ १९ ॥

टी॰ ॥ जिसपुरुषने कामना और शंकल्पसमेत सम्पूर्णकर्मों को ज्ञानरूपी अग्निसे जलादियाहै उसेही ब्रह्मवेत्ता पुरुष पण्डितकहते हैं ॥

मू॰ ॥ त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किंचित्करोतिसः ॥ टी॰

जोपुरुष निराश्रय हुवा कर्मोंके फलोंको त्यागनित्य आत्मामेंही संतुष्टहै वह विद्वानपुरुष कर्मोंको करते हुए भी कुछ नहीं करता ॥ २० ॥

मू॰ ॥ निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥

शारीरंकेवलंकर्मकुर्बन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥टी०

तृष्णाऔरसम्पूर्णपरिग्रहोंको त्यागकर चित्तऔरआत्मा कोजीतनेवा

ला पुरुषकेवलशरीरकेस्थितकेलिये कर्मकर्ताहुवाभी पापोंको नहीप्राप्त

ता ॥२१॥

मू०॥ यदृच्छालाभसन्तुष्टोद्वन्द्वातीतो विमत्सरः

॥समःसिद्धावसिद्धौच कृत्वापिननिवद्ध्यते ॥टी०

जोपुरुषयथालाभमेंसंतुष्टहैं औरद्वन्द्वविमत्सरसेरहित वप्राप्तिअप्रा

प्तिमेंसमानचित्तवालाहै वहभिक्ष्याटनआदिकर्मोंकोकरतेहुए बं

धायमाननहीहोता ॥ ॥२२॥ ॥२२॥

मू०॥गतसंगस्यमुक्तस्यज्ञानावस्थितचेतसः ॥

यज्ञायाचरतःकर्मसमग्रंप्रविलीयते ॥२३॥टी०॥

जोपुरुषफलकीइच्छासेरहित औरकर्तृत्वभोगकृत्व अभिमानसेरहि

तज्ञानमेंस्थितचित्तहोयज्ञादि आचरणोंकोकरताहै उसकेसम्पू

र्णकर्मफलसमेत नाशहोजाताहै ॥२३॥

मू०॥ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुत

म् ॥ब्रह्मैवतेनगंतव्यंब्रह्मकर्मसमाधिना ॥टी०

अग्नि हेअर्जुनअर्पणहविहवण प्राप्तहोनेवालाफलसबब्रह्मरूपहीहै

२४

मू०॥दैवमेवापरेयज्ञंयोगिनःपर्युपासते ॥ ब्र

ह्माग्नावपरेयज्ञं यज्ञेनैवोपयुह्वति ॥२५॥टी०

कोईकर्मकांराडीपुरुष देवयज्ञकरतेहैं औरतत्ववेत्तापुरुष तो ब्रह्मरूपअग्निमें आत्माकोआत्मारूपकरके होमकरतेहैं ॥ २५॥

मू॰॥ श्रोत्रादीनींद्रियाराग्यन्येसंयमाग्निषुयुह्वति॥ शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषुयुह्वति ॥टी॰॥ विवेकी पुरुष श्रोत्रादि इन्द्रियोंको शंयमरूपीअग्निमें औरअविवेकीपुरुष शब्दादिक वियेयोंको श्रोत्रादिक इन्द्रियोंमे होमतेहैं ॥२६॥ ॥२६॥

मू॰॥ सर्वाराींद्रियकर्मारािप्रारााकर्मारािचापरे॥ आत्मसंयमयोगाग्नौयुह्वतिज्ञानदीपिते॥टी॰॥ औरकोईअधिकारीपुरुष सम्पूराइन्द्रियों औरप्रारोांके सम्पूराकिर्मोंको ज्ञानकरकेप्रकाशित आत्म संयम योगरूप अग्निमेहोमतेहैं ॥२७॥ ॥२७॥ ॥२७॥ ॥२७॥

मू॰॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथापरे॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चयतमः संसितव्रताः॥टी॰ कोईअधिकारीपुरुषद्रव्ययज्ञ (दानादिक) कोकोईतपयज्ञ (उपबासादिक) कोकोई योगयज्ञ (पुराय क्षेत्रोंमें प्राराायामादिक) कोकोईस्वाध्याययज्ञ (बेदाध्ययन औरबेदार्थीविचार) कोऔर कोईज्ञानयज्ञको करतेहैं ॥ ॥२९॥ ॥२९॥

मू॰ ॥ अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ टी॰
कोई अधिकारी पुरुष अपानमें प्राणको और प्राणमें अपानको हो-
म करते हैं और कोई अधिकारी प्राण अपानकी गतिको रोककर प्राणा-
याममें कुशल होते हैं ॥ २९ ॥ ॥ २९ ॥ ॥ २९ ॥

मू॰ ॥ अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ टी॰ ॥
प्राणोंमें ज्ञान कर्मइन्द्रियोंको होम करते हैं सब प्रकारके यज्ञ करने वा-
लोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ॥ ३० ॥ ॥ ३० ॥

मू॰ ॥ यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ टी॰
क्योंकि तिन हर एक यज्ञोंके अन्तमें शेष अमृतको भोजन करने वा-
ले सम्पूर्ण अधिकारी मनुष्य नित्य ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥
मू॰ और यज्ञ न करने वालोंको मनुष्यलोक ही नहीं प्राप्त हो सकता तो फि-
र श्रेष्ठ लोक कैसे प्राप्त हो सक्ते हैं ॥ ३१ ॥ ० ॥ ३१ ॥

मू॰ ॥ एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥ क-
र्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ टी॰
हे अर्जुन इस प्रकार बहुत तरहकी यज्ञियां वेदमें विस्तारसे हैं उन्हें

तूकर्महीसे उत्पन्नहुईज्ञानजिन्हेजानकर तूइससंसारसे मुक्तहो
जावेगा ॥ ३२ ॥ ॥ ३२ ॥

मू० ॥ श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वंकर्माखिलंपार्थज्ञानेपरिसमाप्यते ॥ टी० ॥
द्रव्यादिकयज्ञियोंसे आत्मज्ञानरूपीयज्ञ अत्यन्तश्रेष्ठहै क्यों
किसबप्रकारकेपाप इसीसेनष्टहोजेहैं ॥ ० ॥ ३३ ॥ ॥

मू० ॥ तद्विद्धिप्रणिपातेनपरिप्रश्नेनसेवया ॥ उ
पदेक्ष्यंतितेज्ञानंज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥ टी०
हेअर्जुनतिसआत्मज्ञानकेलिये तूब्रह्मवेत्ता तत्वदर्शीपुरुषों
कीशेवासुश्रूषाकरके उनसेनम्रतासमेत दंडप्रणामकरतेहुए प्र
श्नकर किहमेंसंसारक्योंहुवा तोवेतत्वदर्शीपुरुषतुझेआत्मज्ञा
नउपदेशकरेंगे ॥ ३४ ॥ ३४ ॥

मू० ॥ यज्ज्ञात्वानपुनर्मोहमेवंयास्यसिपांडव ॥
येनभूतान्यशेषेणद्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ॥ टी० ॥
जिसआत्मज्ञानसे फेरतूऐसेमोहकोनहीप्राप्तहोवेगा क्योंकि
उसआत्मज्ञानसे सम्पूर्णप्राणियोंको अपनेआत्मा केभीतर
अथवामेंमैंपरमेश्वर केअन्तरभूत समझेगा ० ॥ ३५ ॥ ०

मू० ॥ अपिचेदसिपापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ॥ सर्वंज्ञान प्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ टी०
हे अर्जुन यदि तू सम्पूर्ण पापियों से भी श्रेष्ठ है पापी तौ भी पापरू
पी समुद्र को ज्ञानरूपी नाव में होकर पार होजावेगा ॥ ३६ ॥
मू० ॥ यथैधांसि समीद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽ
र्जुन ॥ ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि सब
प्रकार के काष्ठों को जला देती है तैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि भी
सब प्रकार के पापों को नष्ट करदेती है ॥ ३७ ॥
मू० ॥ नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥ त
त्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥
टी० ज्ञान के बराबर पवित्र करनेवाला तीर्थ यज्ञादि कोई भी क
र्म नहीं है तिस ज्ञान को बहुत काल में कर्मयोग करके शुद्ध चित्तवा
ले पुरुष अपने अन्तःकरण ही में प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥
मू० ॥ श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ टी
का० ॥ जो पुरुष श्रद्धावान् व जितेंद्रिय है और तत्वदर्शी गुरु
की शेवा में तत्पर है वह आत्मज्ञान को प्राप्त होते हुये जल्द ही कैवल्य

मुक्तिकोप्राप्तहोताहै ॥३९॥

मू॰ ॥ अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्य
ति ॥ नायंलोकोऽस्तिनपरोनसुखंसंशयात्म
नः ॥ टी॰ ॥ योगसन्यस्त अज्ञानी अश्रद्धवान औरशंशययु
क्तपुरुषनष्टहोजाते इसलिये उन्हें लोक परलोकमेंकहींभी सु
खनहीहोता ॥ ॥४०॥

मू॰ ॥ योगसन्यस्तकर्माणंज्ञानसंछिन्नसंशय
म ॥ आत्मवंतंनकर्माणि निबध्नंतिधनंजय ॥
टी॰ हे अर्जुनसमदर्शीपुरुष आत्मज्ञानसे संशयोंको नष्ट
करदेताहै औरपरमेश्वरको अर्पणकरतेहुए सम्पूर्णकर्म
करताहै इसलिये वे कर्मउसे बंधायमाननहीहोसक्ते ॥४१॥

मू॰ ॥ तस्मादज्ञानसम्भूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्म
नः ॥ छित्वैनंसंशयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥
टी॰ ॥ हे अर्जुनतिसकारणसे तूअज्ञानसे उत्पन्नहुई सं
शयोंको आत्मज्ञानरूपीतलवारसे काटतेहुए नि
ष्कामकर्मयोगरूपी युद्धकर ॥ ॥४२॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः



इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मवि
द्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञा
नजोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीकृष्णा
र्पणमस्तु शुभंसमाप्तं श्रीराम रघुवीरायनमः
श्रीरामचन्द्रायनमः श्रीगणेशायनमः इति



॥ ३१ ॥
भ॰ गी॰
अ॰ ५

श्रीगणेशायनमः ॥ अर्जुन उवाच ॥ मू॰ ॥ सं
न्यासं कर्मणांकृष्ण पुनर्योगंचशंससि ॥ यच्छ्रे
यएतयोरेकं तन्मेब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ टी॰ ॥
हे कृष्ण भगवान आपकर्मयोग औरकर्मोंके सन्यासकोभी कह
ते हो दोनोंमेंएकजो श्रेष्ठहोवे उसे निश्चयकरके कहो ॥ १ ॥
मू॰ ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ संन्यासः कर्मयोगश्च
निःश्रेयसकरावुभौ ॥ तयोस्तुकर्मसन्यासा
त्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुनसन्या
स और कर्मयोग येदोनों मोक्षके करने हारेहैं परन्तुदोनोंमेंकर्मयोगश्रे
ष्ठहै
मू॰ ॥ ज्ञेयः सनित्यसन्यासी योनद्वेष्टि नकांक्ष
ति ॥ निर्द्वंद्वोहि [illegible]बाहो सुखंबंधात्प्रमुच्यते
॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन जो पुरु[illegible] स्वर्गादिकोंके फलोंकी इच्छा
में प्रीति द्वेष नही करता वह [illegible] यही सन्यासीहै इसलिये वह सु
खसमेत बन्धसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥
मू॰ ॥ सांख्ययोगौपृथग्बालाः प्रवदंतिनपंडि
ताः ॥ एकमप्यस्थितः सम्यगुभयो विंदते फल
म्॰ ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन बिचारहीन पुरुष सन्यास और

कर्मयोगको बिरुद्ध फलवाला कहते हैं परन्तु विचारवान परिडि
त ऐसा नहीं कहते क्योंकि तिन दोनों में एक को भी अच्छे प्रकार से
करता हुवा पुरुष कल्यान को प्राप्त होता है ॥ ॥४॥

मू०॥ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते
॥ एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

टी०॥ कर्मकाराडी और योगी दोनों पुरुष एक ही स्थान को प्राप्त हो
ते हैं इसलिये जो पुरुष सांख्य और योग दोनों को एक ही जानता है
वही यथार्थ देषने वाला है ॥ ॥५॥

मू०॥ सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगः
ता ॥ योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छ
ति ॥६॥ टी०॥ हे अर्जुन बिना कर्मयोग का किया हुवा सं
न्यास तो दुःख ही प्राप्त करता है और कर्मयोग युक्त पुरुष सन्यासी
होकर शीघ्र ही ब्रह्म को साक्षात्कार कर लेता है ॥ ॥६॥

मू०॥ योगयुक्तो बिशुद्धात्मा बिजितात्मा जितें
द्रियः ॥ सर्बभूतात्मभूतात्मा कुर्बन्नपि न लिप्य
ते ॥७॥ टी० जो पुरुष विशुद्धात्मा व जितात्मा जितें
द्रिय और सम्पूर्ण भूतों का आत्मारूप है वह कर्म करते हुए तिन
कर्मों में लिपायमान नहीं होता ॥ ॥७॥

॥ ३२ ॥
भ० गी० ।
अ० ५

मू० ॥ नैवकिंचित्करोमीतियुक्तोमन्येततत्ववि
त् ॥ पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्व
पन्श्वसन् ॥ ८ ॥ टी० ॥ ० ॥ मू० प्रलपन्विसृज
न्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ इन्द्रियाणी
न्द्रियार्थेषुवर्तंत इतिधारयन् ॥ ९ ॥ टी० ॥ जो
गयुक्त परमार्थदर्शीपुरुष देखतेसुनतेस्पर्शकरते गंधलेतेभोज
नकरतेचलतेसोतेस्वासलेतेबोलते दिशाहोतेग्रहणकरते प
लकेंखोलते औरबन्दकरतेइत्यादिक सम्पूर्णकर्मकरतेहुए इं
द्रियांही अपनाअपनाकरतीहैं मैंकुछभीनहींकरता ऐसामान
तेहैं ॥ ८ ९ ॥
मू० ॥ ब्रह्मण्याधायकर्माणिसंगंत्यक्त्वाक
रोतियः ॥ लिप्यतेनसपापेनपद्मपत्रमिवां
भसा ॥ १० ॥ टी० ॥ जोपुरुषफलकीइच्छासेरहित हो
परमेश्वरमेंअर्पणकरतेहुवे कर्मकरतेहैं उसे कमलकेपत्ते
में जलकीतरह वेकर्म लिपायमाननहींहोते ॥ १० ॥
मू० ॥ कायेनमनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैर
पि ॥ योगिनः कर्मकुर्वंतिसंगंत्यक्त्वाऽऽत्म
शुद्धये ॥ टी० ॥ अधिकारीपुरुष फलकीइच्छाकोत्या
गकर अन्तःकरण कीशुद्धताकेलिये शरीरमनबुद्धि औरइं
द्रियोंसे कर्महीकरतेहैं ॥ ॥ ११ ॥

मू॰॥ युक्तःकर्मफलंत्यक्त्वाशांतिमाप्नोतिनैष्ठिकीम् ॥ अयुक्तःकामकारेणफलेसक्तोनिबध्यते ॥टी॰॥ बुद्धिमानपुरुषफलकीइच्छासेरहितकर्मकरकेसत्यशुद्धिऔरमोक्षकोप्राप्तहोतेहुए शांतिकोप्राप्तहोतेहैं औरबुद्धिहीनपुरुषफलकीइच्छासेकर्मकरतेहुएबंधायमानहोतेहैं १२

मू॰॥ सर्बकर्माणिमनसासन्यस्यास्तेसुखंबशी ॥ नवद्वारेपुरेदेहीनैवकुर्वन्नकारयन् ॥टी॰॥ आत्मदर्शीबशीपुरुषतोनौद्वारवालेपुरअर्थात्शरीरमेंसुखसमेत अपनेकोस्थितदेहसेअलगमानताहै इसलियेवहनकोईकर्मआपकरताहै नकिसीसेकरवाताहै ॥ १३

मू॰॥ नकर्तृत्वंनकर्माणिलोकस्यसृजतिप्रभुः ॥ नकर्मफलसंयोगंस्वभावस्तुप्रबर्तते ॥टी॰॥ आत्मादेवदेहादिकोंकेकर्तृत्ववकर्मऔरकर्मोंकेफलोंकेसम्बन्धोंकोनहीउत्पन्नकरता अज्ञानरूपमायाहीसबकर्मकरतीहै ॥ १४

मू॰॥ नादत्तेकस्यचित्पापंनचैवसुकृतंबिभुः ॥ अज्ञानेनावृतंज्ञानंतेनमुह्यंतिजंतवः ॥टी॰॥ परमेश्वरकिसीजीवकेपापपुण्यादिकोंकोनहीग्रहणकरता सर्बकर्मानुसारअचिंत्य

मायालोगोंकोकर्ममेंमिलगायाकरतीहै औरअज्ञानसेघेराहुवा ज्ञानजी
वोंको मोहकेआधीनकियाकरताहै ॥ ॥१५॥

मू॰ ॥ ज्ञानेनतुतदज्ञानं येषांनाशितमात्मनः ॥ ते
षामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयतितत्परम् ॥ टी॰ ॥ जिन
पुरुषोंकेआत्मज्ञानने अज्ञानकोनष्टकरदियाहै उनकावही आत्म
ज्ञानसूर्य्यकीतरह परब्रह्मको प्रकाशकरदेताहै ॥ १६

मू॰ ॥ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ टी॰ ॥
जिनबुद्धिमानसन्यासियोंकीबुद्धिपरब्रह्ममेंस्थितहै औरपरब्रह्मही
हैआत्माजिनका व परब्रह्ममेंहै निष्ठाजिनकी औरपरब्रह्महीहैप्राप्त
होनेयोग्यजिनको वज्ञानकरकेनष्टहोगयाहैपुण्यपापजिनकेऐसेपु
रुषजन्ममरणसे छूटजातेहैं ॥ ॥१७॥

मू॰ ॥ विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥
शुनिचैवश्वपाकेच पण्डिताःसमदर्शिनः ॥ टी॰ ॥ ज्ञा
नीपुरुषविद्याविनययुक्त ब्राह्मणगोहाथीकुत्ताभंगीआदिकोंमें
समदर्शीहीहोतेहैं ॥ १८

मू॰ ॥ इहैवतैर्जितःसर्गोयेषांसाम्येस्थितंमनः ॥ नि

दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ टी० ॥
जिन पुरुषोंका मन ब्रह्ममें स्थित है वे जीवदशामें ही द्वैतप्रपंचको देखते हैं
क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है इसलिये उसमें द्वैत होना असम्भव है १९

मू० ॥ न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥ स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

टी० ॥ ब्रह्मको जाननेवाले स्थिरबुद्धि और सम्मोहसे रहित विद्वान पुरुष प्रिय अप्रिय पदार्थोंमें हर्ष शोक नही करते ॥ ॥ २० ॥

मू० ॥ वाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ॥ स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ टी० ॥ इन्द्रियोंके विषयोंमें अनासक्तचित्त पुरुष अपने अंतःकरणमें विक्षेपरहित और शांतियुक्त सात्विक सुखको प्राप्त होते हैं और वही तृष्णाहीन पुरुष समाधिके द्वारा परमात्माके साथ एकताकी प्राप्तिरूप अक्षयसुखको प्राप्त होते हैं ॥ ॥ २१ ॥

मू० ॥ ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ॥ आद्यन्तवन्तः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ टी० ॥ इन्द्रियोंके सम्बन्धी विषयसुख आदि अंतवाले होनेके कारण दुःखरूप ही हैं इसलिये बुद्धिमान पुरुष उनमें प्रीति नहीं करते ॥ २२ ।

मू० ॥ शक्नोतीहैव यः सोढुम् प्राक्शरीरविमोक्ष

स्मात् ॥ कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ धो

टी०॥ जो मनुष्य काम क्रोध के वेग को शरीर से निकलने से पहिले ही रोकने में समर्थ है वही योगी व सुखी व परम परमार्थ को सम्पादक होने से पुरुष है ॥ ॥२३॥

मू०॥ योऽन्तः सुखोंऽतराराम स्तथांतर्ज्योतिरेव यः ॥ स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति

॥टी०॥ जो पुरुष अन्तर सुख व अन्तर आराम व अन्तर ज्योतिवाला है वह योगी पुरुष ब्रह्मरूप होता हुवा ब्रह्म निर्वान को प्राप्त होतो है ॥०॥२४॥०

मू०॥ लभंते ब्रह्मनिर्वाण मृषयः क्षीणकल्मषाः ॥ छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ टी०

जो पुरुष निष्पाप सन्यास को युक्त संशयों रहित एकाग्र चित्तवाले और सम्पूर्ण भूतों के हित्त चाहने वाले हैं वे ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होने हैं॥२५

मू०॥ कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥ अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ टी०

जो सन्यासी पुरुष कामक्रोधादिकों की उत्पत्ति से रहित चित्त के रोकने में समर्थ आत्मसाक्षात्कार वाले हैं उन्हे सर्वदा ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त है ॥२६॥

मू०॥ स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ॥ प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ

॥टी०॥ जोपुरुषबाहरस्थितशब्दादिकविषयोंको त्यागकरके नेत्रों

कीदृष्टि अर्द्धउन्मेलनको दोनोंभ्रुवोंकेबीचमेंस्थितकरतेहुए तथाप्रा

णअपान दोनोंकोनासिकाकेभीतर रोकतेहुए ॥ २७

मू०॥ यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥

बिगतेच्छाभयक्रोधोयः सदामुक्तएवसः ॥०

टी०॥ वइन्द्री मनऔरबुद्धिको जीततेहुए तथा इच्छाभयक्रोध

कोत्यागतेहुए सम्पूर्णबिषयोंसेबिरक्तहै एसेमननसीलसन्यासी

सबकालमेंमुक्तहीहैं ॥ २८॥

मू०॥ भोक्तारंयज्ञतपसांसर्बलोकमहेश्वरम् ॥

सुहृदयंसर्वभूतानांज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥ टी०

जोपुरुष सम्पूर्णयज्ञतपादिकोंकोभोगता औरसबलोकोंकामहान ई

श्वर तथा सम्पूर्णप्राणियोंका सुहृद ऐसेमैंपरमेश्वरको आत्मरूपजानते

हैं वेयोगयुक्तपुरुष मुक्तिको प्राप्तहोतेहैं ॥ २९।

हरिः ॐ० तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मबिद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्बादे सन्यासयोगो

नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मू॰ ॥ अ
नाश्रितःकर्मफलंकार्य्यंकर्मकरोतियः ॥ ससंन्या
सीचयोगीचननिरग्निर्नचाक्रियः ॥ १ ॥ टी॰ ॥
जोपुरुषकर्मकेफलकेइच्छासेरहित अवश्यकरनेयोग्य नित्यनैमि
त्तककर्मोंकोकरताहै वहयद्यपिअग्निऔर क्रियासेरहितनहीहै
तथापियोगीऔरसंन्यासीहीहै ॥ ॥१॥

मू॰ ॥ यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपांडव
॥ नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चन ॥
टी॰ ॥ हेअर्जुन योगऔरसन्यास एकहीहै क्योंकि संक
ल्पकेत्यागसेरहितकोईपुरुषभीयोगीनहीहोसक्ता ॥ २ ॥

मू॰ ॥ आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते
॥ योगारूढस्यतस्यैवसमःकारणमुच्यते
टी॰ ॥ योगमेंयुक्तहोनेकीइच्छामानपुरुषको नित्यकर्मकर
नाही उचितहै औरयोगयुक्तपुरुषकोसन्यासहीकरनासाधनहै। ३

मू॰ ॥ यदाहिनेंद्रियार्थेषुनकर्मस्वनुषज्जते
॥ सर्वशंकल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥
टी॰ योगयुक्तपुरुष विषयसुखऔरकर्मोंमेंप्रीतिनहीकरताहै

और सम्पूर्णशंकल्पोंसे रहित होताहै ॥ ४

मू० ॥ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ टी० ॥

इसजीव आत्माको बिबेकयुक्तमन करके इस संसारसे उद्धारकरनाचाहिये डुबानानही चाहिये क्योंकि अपना आत्माही आत्माका बंधु और शत्रु है ॥ ५ ॥

मू० ॥ बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मनाजितः ॥ अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ टी० ॥ जो आत्मा विवेकयुक्त मनकरके संघातोंको जीतलेताहै वह आत्मा आत्माका बंधुहै और अजितात्मा आत्माका शत्रुहै ॥ ६ ॥

मू० ॥ जितात्मनः प्रसांतस्य परमात्मा समाहितः ॥ शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ टी० ॥

जो आत्मा शीतोष्णसुखदुःख मान अपमानमेंभी जितात्माहै उसीआत्माका परमात्मासमाधिका विषय होसकताहै ॥ ७ ॥

मू० ॥ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो बिजितेंद्रियः ॥ युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ टी० ॥

जिस पुरुषका चित्त ज्ञान विज्ञानकरके तृप्त और सम्पूर्ण विक्रियोंसे रहि

नवजितेंद्रीहै और मिट्टी पत्थर सोना को बराबर समझता है उसे योगा

रूढ कहते हैं ॥ ॥ ८ ॥

मू० ॥ सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ टी० ॥

सुहृद् मित्र शत्रु उदासीन मध्यस्त द्वेष बन्धु साधु पापी आदि सम्पूर्ण

प्राणियों को समबुद्धि से देखने वाला पुरुष सबसे श्रेष्ठ है ॥ ॥ ९ ॥

मू० ॥ योगीयुंजीत सततमात्मानं रहसिस्थितः ॥

एकाकीयतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ टी० ॥

योगाभ्यासी पुरुष एकान्त में अकेला और चित्त आत्मा जित व निराशी

हो सम्पूर्ण परिग्रहों को त्याग अपने चित्त को निरन्तर योगयुक्त करे १०

मू० ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम ॥

टी० ॥ योगारूढ पुरुष पवित्र देश में अपने निश्चल आसन

को स्थापन करै वह आसन बहुत ऊंचा व नीचा न हो और कुशा के ऊप

र मृगचर्म और कपडों से युक्त होय ॥ ११

मू० ॥ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः

॥ उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १

टी०॥ चित्तऔरइन्द्रियोंकेक्रियाओंकाजीतनेवाला पुरुषअ

पनेमनको एकाग्रकरकेपूर्वोक्तआसनपरबैठ अंतःकरण कीशुद्धता

केलियेसमाधिविषयकअभ्यासकरैं ॥ ॥१२॥

समं कायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरः ॥ संप्रे

क्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ टी०॥

सोयोगाभ्यासीपुरुष दृढप्रयत्नवालाहो शरीरगर्दन सिर कोस

मानसीधा औरअचलकरताहुवा अपनेनासिकाकेअग्रकोदे

खे और दिशाओंकीओर नदेखे ॥ ॥१३॥

मू०॥ प्रशांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ॥ म

नःसंयम्यमच्चित्तोयुक्तआसीतमत्परः ॥ टी०॥

सोयोगाभ्यासीपुरुषप्रशांतात्मा (विशेषकरकेशांति) औरनि

र्भयहोतेहुए ब्रह्मचार्यव्रतमें स्थितमनकोरोकमें परमेश्वरमें चित्त

वालाऔरमेरेपरायणहो स्थित होय ॥ ॥१४॥

मू०॥ युंजन्नेवंसदाऽऽत्मानंयोगीनियतमानसः

॥ शांतिंनिर्बाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छ

ति ॥ टी०॥ पूर्वेयोगाभ्यासीपुरुषअपनेमनकोआधीन

करकेमुझमेंस्थितकरताहुवा मेरेनिर्बाणस्वरूपकोप्राप्तहोपरम

शांतिकोप्राप्तहोताहै ॥ ॥ १५ ॥

मू॰ ॥ नात्यश्नतस्तुयोगोस्ति नचैकांतमनश्नतः ॥
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैवचार्जुन ॥ टी॰ ॥
हेअर्जुन अत्यन्त अधिक आहारी अथवा निराहारी और बहुत सोनेवा
ले अथवा अत्यन्त जागनेवाले पुरुषों का योगसिद्ध नहीं होसक्ता ॥ १६ ॥

मू॰ ॥ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्यकर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा ॥ टी॰ ॥
जिसपुरुषका आहार विहार सोना जागनादिक संक्षेप हों उसीको सम्पूर्ण
दुःखोंका नष्टकरनेवाला योगसिद्ध होताहै ॥ ॥ १७

मू॰ ॥ यदाविनयतंचित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥ नि
स्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्तइत्युच्यतेतदा ॥ टी॰ ॥ जि
ससमय स्थिरचित और सम्पूर्ण विषयों व इच्छाओं से रहित होयह पु
रुष आत्मामें स्थित होताहै उसी समय युक्त कहाजाता है ॥ ॥ १८ ॥

मू॰ ॥ यथादीपोनिवातस्थो नेंगते सोपमास्मृता
॥ योगिनो यतचितस्य युंजतोयोगमात्मनः ॥ टी॰
वायुसे रहित दीपक की ज्योति की तरह योगियोंका चित्त आत्मामें
स्थित रहताहै ॥ ॥ १९ ॥

मू० ॥ यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥ यत्रैव
चात्मनाऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ टी० ॥ जब
योगाभ्यासी पुरुष शुद्ध अन्तःकरण करके मन स्थिर करते हुए प्रत्येक
चैतन्य आत्माको साक्षात्कार करता हुवा आत्मामें संतोषको प्राप्त हो
ताहै उसेही योगयुक्त कहतेहैं ॥ ॥२०॥
मू० ॥ सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
॥ वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥ टी० ॥
महान सुख (स्वरूपानंद) इन्द्रियोंका विषय नहीहै केवल शुद्धि बुद्धि
करके ग्रहण किया जासक्ता है जिस दशामें पूर्वोक्त सुखको अनुभव
करते हुए यह विद्वान पुरुष अपने आत्मासे कुछ भी चलायमान न
हीहोता उसेही योगयुक्त कहते हैं ॥ ॥२१॥
मू० ॥ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥
यस्मिंस्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥
टी० ॥ जिस अवस्था विशेषमें आत्मसुख योगियोंको प्राप्त
होताहै फिर वे उससे अधिक दूसरा लाभ नहीं समझते इसलि
ये महान् दुःख पडने पर भी उससे अलग नही होते ॥ ॥२२॥
मु० ॥ तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥

सनिश्चयेनयोक्तव्यो योगोनिर्विण्णचेतसा ॥टी०

दुःखकेसंबंधसेरहितनिरोध (अचल) अवस्थाहीयोगशब्द

काअर्थजानिये सोयोगउद्वेगसे रहितचित्तऔरनिश्चयकरके अ

भ्यासकरनेयोगहै ॥ ॥२३॥

मू० ॥ संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः

॥ मनसैवेंद्रियग्रामंविनियम्यसमंततः ॥टी०॥

जोगाभ्यासकी इच्छावाला पुरुषवासनासंमत्त संकल्पसे उत्पन्न

सम्पूर्णकामोंको त्यागि और मनसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंसेरोकि मन

कोस्थिरकरे ॥ ॥२४॥

मू० ॥ शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया ॥

आत्मसंस्थंमनःकृत्वा नकिंचिदपिचिंतयेत् ॥

टी० योगीपुरुषधैर्य्यधैर्य्ययुक्तबुद्धिसेधीरेधीरेमनको (

आधीनकरके उसेप्रत्यक्आत्मामें स्थितकर फिर कुछभी

चिंतननकरे ॥ ॥२५॥

मू० ॥ यतोयतोनिश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्

॥ ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशंनयेत् ॥टी०

जिन जिनपदार्थोंमेंमन दौडताहोवे उनसेरोकि उसेआत्मा

मेंस्थिरकरे ॥ ॥२६

मू० ॥ प्रशांत्तमनसंह्येनंयोगिनंसुखमुत्तमं ॥
उपैतिशांतरजसंब्रह्मभूतमकल्मखं ॥टी०॥ प्र
शांतमनवाला पुरुष रजोगुणतमोगुणसे रहितहो ब्रह्मरू
प महान सुखको प्राप्तहोताहै ॥ ॥२७॥

मू० ॥ युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीबिगतकल्मषः
॥ सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतंसुखमश्नुते ॥टी०
पूर्वोक्त प्रकार सेयोगी पुरुषअपने मनको आत्मामेंस्थित क
रनियन्तिही ब्रह्मस्वरुपअखण्ड सुखको अनुभव करताहै॥२८

मू० ॥ सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभूतानिचात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः ॥टी०॥
योगयुक्तात्मा पुरुष समबुद्धिहो सम्पूर्णभूतोंको आत्मामें और
आत्माको सम्पूर्णभूतोंमें देषताहै ॥ ॥२९॥

मू० ॥ योमांपश्यतिसर्वत्रसर्वंचमयिपश्यति ॥ त
स्याहंनप्रणश्यामिसचमेनप्रणश्यति ॥टी०॥
जो योगीपुरुष सम्पूर्ण प्रपंचको मैं परमेश्वर के भीतर और मैं परमेश्वरकोस
वभूतों के अन्तर भूतदेषताहै वहसवकालमें मेरीदृष्टिकेसामने औरमैं
उसकीदृष्टिकेसामने रहताहूँ॥ ॥३०॥

मू॰ ॥ सर्वभूतस्थितंयोमांभजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथावर्त्तमानोपिसयोगीमयिवर्त्तते ॥ टी॰ ॥
जोयोगीपुरुष सम्पूर्णभूतोंमेंस्थित मैंतत्पदार्थको अपनेत्वंपदार्थकेसा
थ अभेदनिश्चयकरताहुवा (वान) साक्षात्कारहै वहबि द्वानपुरुषवर्त्तमानका
लमेंभी अभेदरुपसे मुझेप्राप्तहै ॥ ॥ ३१ ॥

मू॰ ॥ आत्मौप[म्ये]नसर्वत्र समंपश्यति योर्जुन ॥ सु
खंवायदिवादुखं सयोगीपरमोमतः ॥ टी॰ ॥ जोपुरुष
आत्मीकेदृष्टान्तकरकेसम्पूर्णप्राणियोंमें दुःखसुखकोबराबरसमझ
ताहै वहयोगीअत्यन्तश्रेष्टहै ॥ ॥ ३२ ॥

मू॰ ॥ अर्जुनउवाच ॥ योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तः सा
म्येनमधुसूदन ॥ एतस्याहंनपश्यामिचंचलत्वा
त्स्थितिंस्थिराम् ॥ टी॰ ॥ हेभगवन आपनेजोसमत्वयोग व
र्णनकिया उसकीस्थिरतामें मनको अत्यन्त चंचलहोनेकेकारण न
हीदेखता ॥ ॥ ३३ ॥

मू॰ ॥ चंचलंहिमनः कृष्ण प्रमाथिवलवद्दृढम ॥
तस्याहंनिग्रहंमन्ये वायोरिवसुदुष्करम ॥ टी॰ ॥ हे
कृष्णइसमनकीचंचलता औरप्रमाथिता वबलवानता प्रसिद्धिहै इ
सलियेवायुकीतरह इसेस्थिररखना अत्यन्तकठिनहै ॥ ॰ ३४ ॥

मू॰ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ असंशयंमहाबाहोम
नोदुर्निग्रहंचलं ॥ अभ्यासेनतुकौंतेयबैराग्ये
णचगृह्यते ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुननिःसंदेहयहमनअत्यन्तचं
चलहोनेकेकारण पकड़नेमेंअत्यन्तदुस्तरहै परन्तु हेकौंतेय अ
भ्यासऔरबैराग्यसे पकड़ाजासक्ताहै ॥ ३५॥
मू॰ ॥ असंशयतात्मनायोगोदुष्प्रापइतिमेमतिः
॥ वश्यात्मनातु यतताशक्योवाप्तुमुपायतः ॥
टी॰ ॥ अजितपुरुष दुःखकरकेभीयोगको नहीसिद्धिकरसक्के (चित
लेकिनमनकोजितनेवाले पुरुषजत्नकरनेसेसिद्धिकरसक्केहैं ॥
मू॰ ॥ अर्जुनउवाच ॥ अयतिःश्रद्धयोपेतोयोगा
च्चलितमानसः ॥ अप्राप्ययोगसंसिद्धिंकांग(
तिंकृष्णगच्छति ॥ टी॰ ॥ हेकृष्णअल्पप्रयत्नवाला
श्रद्धावानपुरुष तत्वसाक्षात्कारकेलिये यत्नकरताहुवा ज्ञा
नउदयहोनेसे पहिलेहीशरीरत्यागदियाहै तोउसकीक्यागति
होतीहै ॥ ३७
मू॰ ॥ कच्चिन्नोभयबिभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिवनश्यति
॥ अप्रतिष्ठोमहाबाहोबिमूढोब्रह्मणःपथि ॥

॥ टी० ॥ हे महान बाहु वाले कृष्ण भगवान ब्रह्म प्राप्ति के ज्ञान रूप
मार्ग में लगा हुवा पुरुष कर्म उपासना से रहित व दोनों ओर से
भ्रष्ट बिछिन्न बादलों की तरह क्या नष्ट नो नहीं हो जाता ॥ ३८ ॥

मू० ॥ एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ टी० ॥
हे कृष्ण भगवान् हमारी इस संशय को आपके सिवाय और कोई
भी दूसरा अच्छी तरह से निवृत्ति नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थ नैवेह नामुत्र
बिनाशस्तस्य विद्यते ॥ नहि कल्याणकृत्क
श्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ टी० ॥ हे अर्जुन शास्त्रवि
हित कर्म कारी पुरुष कोई भी दुर्गति को नहि प्राप्त होता इस
लिये योगभ्रष्ट पुरुष इस लोक वा परलोक में बिनाश नहीं होता
॥ ४० ॥
मू० ॥ प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्व
तीः समाः ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो
ऽभिजायते ॥ टी० ॥ जोग भ्रष्ट पुरुष पुण्यात्मा पुरुषों
के प्राप्त होने वाले लोकों को प्राप्त होता है तहाँ बहुत काल सुख
भोगकर के फिर पवित्र कुल और श्रेष्ठ धनवानों के यहां जन्म लेता है
इति ॥ ४१ ॥

मू० ॥ अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमता

मू ॥ एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

टी० ॥ अथवा विवेकी तत्वदर्शी योगाभ्यासीयोंके कुलमें ज
न्म लेताहै ऐसा जन्म इसलोकमें अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥ ॥ ४२ ॥०

मू० ॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्
॥ यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ टी० ॥
हे अर्जुन दोनो प्रकारके योग भ्रष्ट पुरुष पूर्वजन्मके संस्कारोंसे ज्ञान
के अवरागादिक साधनोंको प्राप्त होनेहुए मोक्षके लिये अधिक प्रयत्न
करतेहैं ॥ ४३

मू० ॥ पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोपि सः
॥ जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते ।

टी० ॥ पूर्वजन्मका योग भ्रष्ट पुरुष यद्यपि इस जन्ममें मोक्षके लि
ये यत्न करनेकी इच्छा नहीं करता लेकिन पूर्वजन्मका बलवान
संस्कार तिसमार्गमें प्रवृत्ति कराकर कर्मकांराड रूप वेदको त्याग
कराय यज्ञासूबनाय योगाभ्यास द्वारा शब्द ब्रह्मको प्राप्त कराय
हीदेताहै ॥ ॥ ४४ ॥

मू० ॥ प्रयत्नाद्य तमानस्तु योगी संसुद्ध किल्बि
षः ॥ अनेक जन्म संसिद्धि स्ततो याति परांग

र्नि ॥ टी॰॥ जो योगी पुरुष मुक्तिकेलिये अधिक अधिक य
त्नवाला होताजाताहै उसको अनेक जन्मकी संसिद्धि प्राप्त है उसके म
लरूप पाप योगरूप जलसे धोये जाचुकेहैं इसलिये वह साधनों
की परिपाकतासे परम मुक्तिको प्राप्त होवेगा ॥ ४५

मू॰ ॥ तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतो
धिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी
भवार्जुन ॥ टी॰॥ हे अर्जुन तत्ववेत्ता योगी तपस्वियों व परो
क्ष ज्ञानियों व कर्मकाण्डियों सबसे अधिक श्रेष्ठ है इसलिये
तूभी योगी हो ॥ ॥४६॥

मू॰ ॥ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ॥ श्रद्धा
वान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ टी॰॥ जो योगी पु
रुष श्रद्धावान हो मुझमें स्थित अन्तःकरके मैं परमेश्वर को भ
जता है वह सम्पूर्ण प्राणियों से श्रेष्ठ है ॥ ॥४७

हरिः ॐ॰ तत्सद्ब्रह्मणेनमः
इति श्री मद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे अभ्यासयोगो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥
श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥ श्रीरामरघुबीरायनमः ॥

॥श्रीगणेशायनमः॥ श्रीभगवानउवाच ॥ मू०॥
मय्यासक्तमनाःपार्थयोगंयुंजन्मदाश्रयः॥ असं
शयंसमग्रंमांयथाज्ञास्यसितच्छृणु॥टी०॥हेअ
र्जुनतेरामनमैंपरमेश्वरमेंस्थितहै औरतूमेरीशरणमेंप्राप्तहै इ
सलियेसंशयसेरहितपूर्वोक्तयोगकरताहुवा जिसप्रकारहमें
जानैगाउसेसुन॥ ॥१॥

मू०॥ज्ञानंतेऽहंसविज्ञानमिदंवक्ष्याम्यशेषतः॥
यज्ज्ञात्वानेहभूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥टी०
मैंसाधनोंसमेतज्ञानविज्ञानकोतुमसेवर्णनकरताहूं जिसेजान
करयहांकोईपदार्थजाननेयोग्यबाकीनहीरहजाता॥॥२॥

मू०॥मनुष्याणांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये॥
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्वतः॥
टी०॥हजारोंमनुष्योंमेंकोईएकमेरेजाननेकेलियेजत्नकर
ताहै औरउनहजारोंयत्नकारियोंमें कोईएकमुझेवास्तव
स्वरूपसेजानताहै॥ ॥३॥

मू०॥भूमिरापोनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच॥
अहंकारइतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा॥टी०॥
पृथ्वीजलअग्निवायुआकाश मनबुद्धिऔरअहंकारयह

आठप्रकारकीमेरीप्रकृतिहै॥ ॥४॥

मू॰॥ अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥टी॰॥पू
र्वोक्त अष्टप्रकारकी प्रकृति अपरा कहीजाती है अब इससे श्रेष्ठ जी
वस्वरूप परा प्रकृति है जो सम्पूर्ण जगत् धारण किये हुए हैं॥५॥

मू॰॥ एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥टी॰॥सं
पूर्णभूत इन दोनों प्रकृतियोंके कार्यरूप हैं इसलिये मैं परमेश्वर स
म्पूर्णजगतकी उत्पत्ति प्रलय पालन का कारण हूं॥ ६

मू॰॥ मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय॥ म
यि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥टी॰॥ हे अर्जु
न मैं परमेश्वरसे अलग कोई भी पदार्थ परमार्थदृष्टि करिके सत्य न
हीं है मणिमालामें सूत्रकी तरह मैं परमेश्वर सम्पूर्णजगतमें व्याप्त हूं
७

मू॰॥ रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्य्ययोः
॥ प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥टी॰॥
हे अर्जुन जलमें रस चन्द्रसूर्य्यमें प्रकाश वेदोंमें प्रणव आकाशमें
शब्द और मनुष्योंमें पुरुषप्रयत्न मैं हूं॥ ॥८॥

मू॰॥ पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि तपस्विषु

बिभावसौ ॥ जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्वि
षु ॥ टी० ॥ पृथ्वीमें सुगंध अग्निमें प्रकाश और उष्णता स
म्पूर्ण प्राणियोंमें जीवन तपस्वियोंमें तपस्यामैं हूं ॥ ९ ॥
मू ॥ बीजं मां सर्वभूतानां बिद्धि पार्थ सनातनम् ॥ बु
द्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ टी० ॥
हे अर्जुन उत्पत्तिसे रहित मैं सर्बदा सम्पूर्ण भूतोंका कारण हूं बुद्धि
मानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज मैं हूं ॥ १०
मू० ॥ बलं बलवतां चाहं कामरागबिवर्जितम् ॥ ध
र्माबिरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ॥ टी० ॥ हे
भरतबंशमें श्रेष्ठ अर्जुन बलवान पुरुषोंका कामरागसे रहित बल
मैं हूं और कामोंमें धर्मयुक्त काम मैं हूं ॥ ११ ॥
मू० ॥ ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि ॥ टी० ॥ सात्वि
क राजस तामस सम्पूर्ण पदार्थ मैं परमेश्वरसे ही उत्पन्न होकर सदा
मेरे आधीन और अन्तर भूत ही रहते हैं परंतु मैं उनसे अलग हूं ॥ १२ ॥
मू० ॥ त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥ मो
हितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ टी० ॥ पृ

॥४३॥ वेंकि त्रिगुणात्मक भावोंने सम्पूर्णजगतकोमोहितकररक्खाहै इ
॥भ॰ गी॰॥ सलिये लोग मैं अव्यय परे नश्वर को नहीं जानते ॥ ॥१३॥
अ॰ ७
मू॰ ॥ दैवी ह्येषा गुणमयी मममाया दुरत्यया ॥
मामेवयेप्रपद्यंते मायामेतां तरंतिते ॥ टी॰ ॥ हे अ
र्जुन यह मेरी त्रिगुणात्मकमाया अत्यन्त दुस्तरहै लेकिन मुझेसा
क्षात्कार करलेने वाले पुरुष इसे नष्ट करदेतेहैं ॥ ५.८ ॥ ॥१४॥
मू॰ ॥ नमांदुष्कृतिनोमूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥ मा
ययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ टी॰ ॥ पा
पीमूढअधम मनुष्य मेरी मायामें आशक्त होतेहैं इसलियेउन
का ज्ञान नष्टरहता और वेदम्भदर्पादरूप असुर भावके आश्रय
रहतेहैं इस्वास्ते मुझे नहींभजते ॥ ॥१५॥
मू॰ ॥ चतुर्बिधाभजंतेमांजनाः सुकृतिनोर्ज्जुन ॥
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ ॥ टी॰ ॥
हे भरतवंसमें श्रेष्ठ अर्जुन एक दुखी दूसरे मुझे जानने की इच्छावा
ले तीसरे धनादिक चाहनेवाले चौथे ज्ञानी ये चार प्रकारके भक्त मु
झे भजतेहैं ॥ १६
मू॰ ॥ तेषांज्ञानीनित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः ॥ टी॰ ॥ नि

नचारोंमेंनित्ययुक्तएकभक्तिवालाज्ञानीश्रेष्ठहैक्योंकि मैंज्ञा
नीकोअत्यन्तप्याराहूँऔरवहमुझेअत्यन्तप्याराहै ॥ ॥१७॥॥

मू० ॥ उदाराः सर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम् ॥
आस्थितः सहियुक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम् ॥

टी० ॥ आर्तादिक तीनोंप्रकारके भक्त भीश्रेष्ठहैं परन्तुज्ञानी
तोहमारा आत्मा हीहै क्योंकि ब्रह्मज्ञानी मैं परमेश्वरमें मनल
गायेहुए मुझेही सबसेंश्रेष्ठ परमफल रूपमानताहै ॥ ॥ १८॥॥

मू० ॥ बहूनांजन्मनामंतेज्ञानवान्मांप्रपद्यते ॥ वा
सुदेवः सर्वमिति समहात्मासुदुर्लभः ॥ टी० ॥ सो
ज्ञानवानपुरुष बहुतजन्मोंके अन्तमें यहसम्पूर्णजगतवासुदेवरू
पहीहै इसप्रकार ज्ञानवालाहोकर अभेदरूपसेमुझेभजताहै
इसलिये वह महात्मा अतिही दुर्लभहै ॥ ॥१९॥

मू० ॥ कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तंतंनियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ टी० ॥
जिनपुरुषोंकाअनेक प्रकारकीकामनाओं करके ज्ञाननष्टहोग
याहै वे पूर्वलेस्वभावके अनुसार औरदेवतोंकाआराधनक
रतेहैं ॥ ॥२०॥

मू० ॥ योयो यांयांतनुंभक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छ

ति ॥ तस्यतस्याचलांश्रद्धांतामेवविदधाम्य
हम् ॥ टी॰ ॥ जोजोसकामपुरुषभक्तियुक्तहोंकरजिसजि
संदेवताको श्रद्धासमेत आराधनकरताहै मैंउसीमेंउसकी
श्रद्धावढादेताहूं ॥ ॥२१॥

मू॰ ॥ सतया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते
॥ लभतेचततः कामान्मयैवविहितान्हिता
न् ॥ टी॰ ॥ क्योंकि सकामपुरुष श्रद्धासमेत जिनदेवतों
कीपूजाकरतेहैं मैंउन्हींके द्वारा उनकी कामना सिद्धिकरदे
ताहूं ॥ ॥२२॥

मू॰ ॥ अन्तवत्तुफलंतेषां तद्भवत्यल्पमेधसा
म् ॥ देवान्देवयजोयांति मद्भक्तायांतिमामपि
॥ टी॰ ॥ परन्तु तिन अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंका वहफल
नासवानहै क्योंकि देवताओंकेभक्त तिनं देवताओंको औ
रमेरेभक्त मुझेपरत्यक्षप्राप्तहोतेहैं ॥ ॥२३॥

मू॰ ॥ अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः
॥ परंभावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ टी॰ ॥
बुद्धिहीनपुरुषमुझे सबकाकारणरूप वमेरेसगुणनिर्गुणस्व
रूपको यथार्थनहीजानते इसलियेमैं अव्यक्तपरमेश्वर

कोमनुष्यही मानतेहैं इसवास्तेवेमुझे नही भजते ॥ ॥ २४ ॥

मू० ॥ नाहंप्रकाशः सर्बस्ययोगमाया समावृ
तः ॥ मूढोयंनाभिजानाति लोकोमामजमव्य
यम् ॥ टी० ॥ मैं परमेश्वर सबको परत्यक्ष नही होताहूं इस
लिये जन्ममरणसे रहित मैं परमेश्वर को मूर्ख नही जानते ॥ २५ ॥

मू० ॥ वेदाहंसमतीतानि वर्तमानानिचार्जुन ॥ भ
विष्यानिचभूतानि मांतुवेदनकश्चन ॥ टी० ॥ हे
अर्जुन मैं भूतवर्तमानभविष्यततीनोंकालोंके सम्पूर्णप्रा
णियोंकोजानताहूं औरमेरीभक्ति सेहीन मायासेमोहित
कोईभीपुरुष मुझे नही जानते ॥ ॥ २६ ॥

मू० ॥ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेनभारत ॥
सर्बभूतानिसंमोहं सर्गेयांति परंतप ॥ टी० ॥
हे अर्जुनसम्पूर्णप्राणी इस शरीरके उत्पत्तिकेपीछे इच्छाद्वे
षदोनोंसेउत्पन्नहुए सम्पूर्ण शीतोष्णादिक द्वन्द्व निमित्ति
क मोहकरके मोहितरहतेहैं ॥ २७

मू० ॥ येषांत्वंतगतंपापं जनानांपुण्यकर्मणा
म् ॥ तेद्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजंतेमां दृढव्रताः ॥
टी० ॥ जिनमनुष्योंके पुण्यकर्मोंकरके पापनष्टहोगयेहैं वे

द्वन्द्वमोहसेरहित होऔरदृढव्रतहोकर मैंपरमेश्वरकोभजतेहैं ॥२८॥

मू० ॥ जरामरणमोक्षायमामाश्रित्ययतंतिये ॥ तेब्रह्मतद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मंकर्मचाखिलम् ॥ टी० ॥ जोपुरुषजन्ममरणादिकोंसे छूटनेके लिये मैंसगुणपरमेश्वर (सद्गुरु) केआश्रयहो जत्नकरतेहैं वेतत्वज्ञानके सम्पूर्णसाधनोंको वतत्तपद निर्गुणब्रह्मको औरत्वंपद आत्माको जानतेहैं ॥ ॥२९॥

मू० ॥ साधिभूताधिदैवंमांसाधियज्ञंचयेविदुः ॥ प्रयाणकालेपिचमांतेविदुर्युक्तचेतसः ॥ टी० ॥ जोपुरुषअधिभूतअधिदैव अधियज्ञसमेत मुझे सर्वदाभजतेहैं वे मैंपरमेश्वरमेंयुक्तचित्तवालेहो मरणकालमें भीमुझे जानतेहैं ॥ ३०॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्बादे ज्ञानविज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ७

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥

श्रीरामचन्द्रायनमः ॥ अर्जुन उवाच ॥ मू०॥
किंतद्ब्रह्मकिमध्यात्मंकिंकर्मपुरुषोत्तम
॥टी०॥ अधिभूतंचकिंप्रोक्तमधिदैवंकिमुच्य
ते॥ ० हेभगवान ब्रह्मअध्यात्मकर्म अधिभूतअधिदैव किसेक
हतेहैं ॥ ॥१॥
मू०॥ अधियज्ञःकथंकोत्रदेहेऽस्मिन्मधुसू
दन ॥ प्रयाणकालेचकथंज्ञेयोसिनियतात्म
भिः ॥टी०॥ अधियज्ञकौनहै औरसोअधियज्ञकिसप्रका
रचिंतनकरनेयोग्यहै औरवहअधियज्ञ इसदेहमेंवर्तेहै या
बाहर और मरणकालमें युक्तचित्तहोकरउसेकिसप्रकार जाननाचाही
ये ॥२॥
मू० ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ अक्षरंब्रह्मपरंस्व
भावोध्यात्ममुच्यते ॥ भूतभावोद्भवकरोवि
सर्गः कर्मसंज्ञितः ॥टी०॥ परमअक्षरब्रह्मऔर
स्वभावअध्यात्मकहाजाताहै औरभूतोंकीउत्पत्ति व बढती
करणेहारेयज्ञ दानादिक कर्मकहेजातेहैं ॥ ॥३॥
मू०॥ अधिभूतंक्षरोभावःपुरुषश्चाधिदैव
तम ॥ अधियज्ञोहमेवात्रदेहेदेहभृतांवर
॥टी०॥ हेमनुष्योंमेश्रेष्ठअर्जुन शरीरादिकनाशवानपदार्थ

अधिभूत है और हिरण्यगर्भनाम पुरुष अधिदेव है और इस देहमें अधियज्ञ मैं बासुदेव ही बाह्यान्तर्यामी व साक्षीरूप हूँ ॥४॥

मू॰॥ अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥ यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ टी॰॥ हे अर्जुन जो पुरुष मैं परमेश्वर को चिंतन करता हुवा शरीर त्याग करता है वह निःसंदेह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है॥

मू॰॥ यंयंवापिस्मरन्भावंत्यजत्यंते कलेवरम् ॥ तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥ टी॰ जो पुरुष सर्बकाल में जिस देवता को आराधन करता है वह अंत में भी उसी को चिंतन करते हुए शरीर त्याग कर उसी देवता को प्राप्त होता है ॥ ६॥

मू॰॥ तस्मात्सर्बेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ॥ मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ टी॰॥ इसलिये हे अर्जुन तू मेरा स्मरण करते व मन और बुद्धि को सर्बदा मुझे अर्पण करते हुए युद्ध करतो तू निःसंदेह मुझे प्राप्त होवेगा ॥ ॥७॥

मू॰। अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ॥

परमंपुरुषंदिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥टी॰

जोपुरुषयोगाभ्यासकरके युक्त औरसर्बदा सब बिषयोंकोत्या

गपरमदिव्य पुरुषकोचिन्तनकरताहैवहउसीपुरुषकोप्राप्त होताहै

मू॰ ॥ कबिंपुराणमनुशासितारमणोरणीयां

समनुस्मरेद्यः ॥ सर्बस्य धातारमचिंत्यरूप

मादित्यबर्णं तमसः परस्तात् ॥टी॰॥ सर्बज्ञअ

नादि सबकानियन्ता अत्यन्त सूक्ष्म सबकाधारणकरनेवाला अ

चिन्त्य सूर्य्यकीतरह प्रकाशक अज्ञान सेपरे ऐसेदिव्यपुरुषको

जोपुरुषचिन्तन करताहैवहउसेही प्राप्तहोताहै ॥०॥८॥०॥

मू॰ ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्यायुक्तो

योगबलेनचैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य स

म्यक्सतंपरंपुरुषमुपैति दिव्यम् ॥टी॰॥०

जोपुरुषमरनेकेसमयभक्तियुक्त एकाग्रमनकरताहुवा योगयुक्तहो

दोनोंभ्रुवोंकेबीचमें प्राणकोअच्छेप्रकार स्थापनकर दिव्य पु

रुषकास्मरणकरताहै वहउसेप्राप्तहोताहै ॥०॥१०॥०॥

मू॰ ॥ यदक्षरंबेदबिदोबदंति बिशंतियद्यतयो

बीतरागाः ॥ यदिच्छंतोब्रह्मचर्यंचरंति तत्तेप

दंसंग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥टी॰॥ बेदबेत्तापुरुषजिसेअ

क्षरब्रह्म कहते हैं अथवा कामनारहित सन्यासी जिस अक्षर को प्राप्त होते हैं व ब्रह्मचर्यादिक साधक जिस अक्षर की इच्छा करते हैं उसे ही अब तुमसे संक्षेप से कहते हैं ॥ ॥११॥

मू॰॥ सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ॥ मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ टी॰॥ जो उपासक पुरुष सम्पूर्ण इन्द्री द्वारों और मन को रोक प्राण मूर्धा (मध्य त्रिकुटी) में स्थित कर आत्मविषयक समाधि करते हुए ॥ ॥१२॥

मू॰॥ ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥ यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ टी॰॥ एकाक्षर ब्रह्म को उच्चार करते हुए देह त्याग करते हैं वे परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ॥१३॥

मू॰॥ अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ॥ तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ टी॰॥ जो पुरुष अनन्य चित्त हो निरन्तर मरने तक मैं परमेश्वर का चिन्तन करता है उसे मैं अत्यन्त सुगम हूं ॥ ॥१४॥

मू॰॥ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ॥ नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

टी०॥ मेरे अनन्य साधन करने वाले उपासकों को सम्पूर्ण दुः
खों का मूल जन्म नहीं होता इसलिये वे श्रेष्ठ मोक्ष ही को प्राप्त होते हैं

मू०॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जु
न॥ मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ टी०
यहां से ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण प्राणी जन्म मरण वाले ही हैं हे अ
र्जुन केवल मेरे भक्त ही का जन्म नहीं होता॥ ~ ॥१६॥

मू०॥ सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः॥
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
टी०॥ जो पुरुष हज़ार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन और उतने
ही की एक रात्रि जानते हैं वही दिन रात्रि के जानने वाले हैं॥१७॥

मू०॥ अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरा
गमे॥ रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञ
के॥ टी०॥ पूर्वोक्त ब्रह्मा के दिन में अव्यक्त ब्रह्म से सम्पू
र्णव्यक्तियां उत्पन्न होती हैं और रात्रि को उसी में लय हो जाती हैं॥

मू०॥ भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते
॥ रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ टी०
पूर्व कल्पों में जो भूतों के समूह थे वेही पराधीन हो ब्रह्मा के दिन
में उत्पन्न होते हैं और रात्रि को लय हो जाते हैं॥ ०॥१९॥०॥

मू०॥ परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्स

नातनः ॥ यः ससर्वेषुभूतेषुनश्यत्सुनबिनश्य
ति ॥टी०॥ सत्तास्फुरण जोव्यक्ताव्यक्तसेपरे औरअत्यन्त
लक्षण वइन्द्रियोंका अविशय औरसत्यहै वहसम्पूर्णभूतोंके
नष्टहोनेसेनाशनहींहोसक्ता ॥ ॥२०॥

मू०॥ अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्तमाहुःपरमांगति
म् ॥ यंप्राप्यननिवर्तन्तेतद्धामपरमंमम ॥टी०॥
जोअव्यक्त (सत्तास्फुरण) अक्षरकहाजाताहै उसेही श्रुतिस्मृ
तियां परमगतिकहतीहैं उसेअधिकारीजनप्राप्तहोकर फिरज
न्ममरणसेरहितहोजातेहैं वहीमेरापरमधामहै ॥ ०॥२१॥

मू०॥पुरुषःसपरःपार्थभक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया॥
यस्यांतस्थानिभूतानियेनसर्वमिदंततम् ॥टी०॥
जोउत्तमपुरुष (राम) सम्पूर्णजगतमेंव्याप्तहै अर्थात जिसके अ
न्तरभूत सम्पूर्णजगतहै उसेलोगअनन्यभक्तिकरकेही प्रशन्न
करतेहुए प्राप्तहोसक्तेहैं ॥ ॥२२॥

मू०॥ यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः
प्रयातायांतितंकालंबक्ष्यमिभरतर्षभ ॥टी०॥
हे अर्जुनजिसरास्तेमें जानेवाले अधिकारीपुरुष अनावृत्ति और
आवृत्तिकोप्राप्त होतेहैं उसेकहताहूँ ॥ २३ ॥

मू०॥ अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासाउ त्तरायणम् ॥ तत्रप्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः ॥ टीका० ॥ जिसरास्तेमें अग्नि दिन शुक्लपक्ष षट्मास उत्तरायणादिक स्थितहैं उसमेंसगुणब्रह्मके उपासकपुरुषजानेहुए मोक्ष कोप्राप्त होनेहै ॥ ॥ २४ ॥ ॥

मू०॥ धूमोरात्रिस्तथाकृष्णः षण्मासाद क्षिणायनम् ॥ तत्रचान्द्रमसंज्योतिर्योगी प्राप्यनिवर्तते ॥ टी० ॥ औरजिससकामरास्तेमें धूम्र रात्रिकृष्णपक्षषट्मांसदक्षिणायनादिकस्थितहैं उसमेंकर्म कांडीपुरुषजातेहुए चन्द्रलोककोप्राप्तहोफिरआवृत्तिही कोप्राप्तहोनेहैं ॥ २५

मू० शुक्लकृष्णेगतीह्येतेजगतः शाश्वते मते ॥ एकयायात्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्त्तते पुनः ॥ टी० ॥ यहशुक्लकृष्णदोनोमार्गअनादिकाल सेइनलोकोंमें प्रसिद्धहैं उनमेंसेशुक्लमार्गमेंजानेवालेकोईको ईपुरुषअनावृत्तिकोप्राप्तहोनेहैं औरकृष्णमेंजानेवालेतोस बआवृत्तही कोप्राप्तहोनेहैं ॥ ॥ २६ ॥

मू०॥ नैतेसृतीपार्थजानन्योगीमुह्यतिक

श्चन ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु योग युक्तो भ
वार्जुन ॥ टी० ॥ हेअर्जुनध्यानपरायरा योगी पुरुषमो
हकोनहीप्राप्तहोने इसलिये तूभीसब कालमें ध्यान परायरा हो
मू० ॥ वेदेषुयज्ञेषु तपःसु चैव दानेषुयत्पुराय
फलप्रदिष्टतम ॥ अत्येति सर्वमिदंविदि
त्वा योगीपरमस्थान मुपैति दिव्य चाद्यम ॥
टी० ॥ वेदोंके पढनेसे वयज्ञोंकेकरनेसे तपदानादिकों
केकरनेसेजोफलशास्त्र कहताहै ध्यानपरायरा योगी उन
सबफलोंके सुखोंकोप्राप्त होतेहुए परमपदकोप्राप्त होतेहैं ॥
॥ २८ ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मरोनमः

इतिश्री मद्भगवद्गीता सूपनि षत्सुब्रह्म
विद्या यांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
ऽऽ क्षरब्रह्मयोगोनामअष्टमोऽध्यायः ॥
८ श्रीकृष्णार्परामस्तु श्रीरामचन्द्रायन
मः श्रीनारायरायनमोनमःसुभमस्तु



श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
मू० ॥ इदंतुतेगुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे
॥ ज्ञानविज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसे
ऽशुभात् ॥ टी० ॥ हेअर्जुनतूअसूयादोषसेरहितहै
इसलियेमैंयहअत्यन्तगुह्यविज्ञानसमेतज्ञानकहताहूँजि
सेप्राप्तहोकरतूसंसार बंधनसे छूटजावेगा ॥ ॥ १ ॥ ॥
मू० ॥ राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्त
मम् ॥ प्रत्यक्षावगमं धर्म्म सुसुखंकर्तु
मव्ययम् ॥ टी० ॥ आत्मज्ञानसम्पूर्णविद्याओंमें औ
रसर्बगुह्यपदार्थोंकाराजाव सबसेउत्तमपवित्रकरतासुर
खसाध्यप्रत्यक्षप्रमाणवालाऔर सम्पूर्णधर्मोंकाफलरू
पहै ॥ ॥ २ ॥
मू० ॥ अश्रद्दधानाः पुरुषाधर्मस्यास्य
परन्तप ॥ अप्राप्यमांनिबर्तन्ते मृत्युसंसार
बर्त्मनि ॥ टी० ॥ हेअर्जुनजोपुरुष आत्मज्ञानरूप
धर्मकी इच्छा सेरहितहैंउसमैंनहींप्राप्तहोताइसलियेवह
मृत्युयुक्तसंसाररूपमार्गमेंचक्कररवायाकरताहै ॥ ॥ ३ ॥

मू॰॥ मयाततमिदंसर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना
॥ मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाहंतेष्ववस्थि
तः ॥टी॰॥ मैंअव्यक्तमूर्तिवालापरमेश्वर सम्पूर्णज
गतमेंव्याप्त हूँइसलिये सम्पूर्ण प्राणीमेरेअंतरभूतहेलेकि
नमैं उनसे अलगहूँ॥ ॥४॥

मू॰॥ नचमत्स्थानि भूतानि पश्यमेयोगमैश्व
रम्॥ भूतभृन्नचभूतस्थो ममात्माभूतभाव
नः॥टी॰॥ हेअर्जुननमेरेविलक्षणएश्वर्यकोदेखकि
सम्पूर्णभूतोंकोउत्पन्नकरकेधारणकरतेहुएभीमैंउनसेअ
लगरहताहूँ॥ ॥५॥

मू॰॥ यथाऽकाशस्थितोनित्यंवायुःसर्वत्र
गोमहान॥ तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानी
त्युपधारय॥टी॰॥ जैसेअत्यन्तपरिमाणवालाव
सम्पूर्णदिशाओंमेंचलनेवालापवनआकाशमें स्थितरह
ताहैवैसेहीसम्पूर्णप्राणियोंकोमुझमेंस्थितजानिये॥६॥

मू॰॥ सर्वभूतानिकौन्तेय प्रकृतियांनि माए
मिकाम॥ कल्पक्षयेपुनस्तानि कल्पादौवि
सृजाम्यहम॥टी॰॥ हेअर्जुन प्रलयकालमेंसम्पू

राणिरागी मेरीचित्रगुणात्मकमायोमेंलयहोजातेहैं वेहीस्व

ष्टिकालमेंउत्पन्नकियेजातेहैं ॥ ७ ॥

मू० ॥ प्रकृतिंस्वामवष्टभ्य विसृजामिपुनःपु

नः ॥ भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात्

॥ टी० ॥ मैंअपनीमायारूपप्रकृतिवसीलेसेउसीमाया

सेउत्पन्नहुएआकाशादिकभूतोंकेसमूहकोवारवारउत्प

न्नकियाकरताहूं ॥ ॥ ८ ॥

मू० ॥ नचमांतानिकर्माणिनिबध्नंतिधनंजय

॥ उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ टी०

॥ हेअर्जुनमैंआसक्तिसेरहितउदासीनपुरुषोंकीनरह

स्रष्टिआदिकसम्पूर्णकर्मकरताहूंइसलियेमुझेवेकर्म

बंधायमाननहीहोते ॥ ॥ ९ ॥

८ मू० ॥ मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराच

रम् ॥ हेतुनाऽनेनकौंतेयजगद्विपरिवर्तते ॥

॥ टी० ॥ हेअर्जुनमैंपरमेश्वरसेप्रकाशितमायारूपप्रकृति

हीअनेकप्रकारवालेइससम्पूर्णजगतकोउत्पन्नकरतीहै



मू० ॥ अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥ परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥

टी० ॥ अविवेकी मनुष्य मुझे सबसे श्रेष्ठ परमार्थिक तत्व सम्पूर्ण भूतों का महान ईश्वर नहीं जानते इसलिये वे विपर्यय मनुष्य में रे अवतारों को अनादर करते हैं ॥ ११ ॥

मू० ॥ मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥ राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ टी० ॥ हे अर्जुन अविवेकी पुरुषों के कर्म आशा ज्ञान निष्फल हैं इसलिये वे राक्षसी आसुरी और मोहनी प्रकृति के आधीन होते हैं ॥ १२ ॥

मू० ॥ महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥ भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन दैवी प्रकृति धारण करनेवाले महात्मा पुरुष जिनका मन मुझसे अलग नहीं है मैं परमेश्वर को नाश से रहित और सम्पूर्ण भूतों का कारण जानते हुए भजते हैं ॥ १३ ॥

मू० ॥ सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः

नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

टी० ॥ पूर्वोक्तमहात्मा सर्वदा दृढव्रतवाले व नित्ययुक्त

होकर मैं ब्रह्म को कीर्तन नमस्कारादि करते हुए भक्तिसे म

नुष्य अनेक प्रकारसे मेरा ही चिंतन करते हैं ॥ ० ॥ १४ ॥ ० ॥

मू० ॥ ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपास

ते ॥ एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमु

खम् ॥ टी० ॥ उत्तम अधिकारी ज्ञानरूप यज्ञ करके

सबमें मुझे एक ही रूपसे देखते हैं और मध्यम अधीका

री भेद करके मानते हैं और मंद अधिकारी बहुत प्रकार

के मेरे रूप जानते हैं ॥ ॥ १५ ॥

मू० ॥ अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषध

म ॥ मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

टी० ॥ कर्मयज्ञ स्वधा औषध मंत्र आज्य अग्नि औ

र हवन आदि सब मैं ही हूं ॥ ॥ १६ ॥

मू० ॥ पिताहमस्य जगतो माता धाता पिताम

हः ॥ वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव

च ॥टी०॥ इसजगतका पितामाता धाता ब्रह्मारूपमें
ही हूँ और जानने योग्य पवित्र वस्तु औ ॐकार और ऋग
शामयजुर बेद मे परमेश्वरही हूँ ॥ ॥१७॥

मू०॥ गतिर्भर्ता प्रभुः शाक्षी निवासः शरणं
सुहृत ॥ प्रभवः प्रलयः स्थानं बीजमब्ययम् ॥
॥टी०॥ गतिभर्ता प्रभुसाक्षी निवासशरणसुहृत
उत्पत्ति प्रलयस्थाननिधान बीजरूपमें अव्यक्त परमेश्वर ही हूँ
॥१८॥

मू०॥ तपाम्यहमहं बर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि
च ॥ अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥
टी०॥ हेअर्जुन मैं परमेश्वरही ग्रीष्मऋतु में तपकर जल
खींच लेता हूँ उसे ही बर्षा में पृथ्वी पर छोडता हूँ और
अमृत औ मृत्यु सत असत आदि में ही हूँ ॥ ॥१९॥

मू०॥ त्रैबिद्यामां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरि
ष्ट्वा स्वर्गतिं पार्थयंते ॥ ते पुण्यमासाद्य सु
रेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान्दिवि देवभोगान ॥
॥टी०॥ त्रैवेद्य पुरुष काम्य यज्ञों को कर मेरा पूजन क
रतेहुए व सोमपान करनेहुए पापों से रहित होय स्वर्ग की

इच्छा करते हुए स्वर्ग में दिव्य भोगों को भोगते हैं ॥२०॥

मू० ॥ तेतं भुक्त्वा स्वर्गलोकं बिशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं बिशंति ॥ एवं त्रयीधर्मम नुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ टी०

पूर्वोक्त सकाम पुरुष देवलोक में सुख भोग कर पुण्य नाश होने पर वेदोक्त काम्य कर्मों को दिव्य भोगों की कामना से निश्चय करते हुए फिर मनुष्य लोक में आते हैं ॥२१॥

मू० ॥ अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ टी० ॥ जो पुरुष अनन्य हो मेरा चिंतन करते हुए मुझे साक्षात्कार करते हैं उनका योगक्षेम मैं परमेश्वर ही करता हूँ ॥

मू० ॥ येप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥ तेपि मामेव कौंतेय यजंत्यबिधिपूर्वकम् ॥

टी० ॥ हे अर्जुन श्रद्धा से मेरे तई और देवताओं के पूजने वाले भी अज्ञान पूर्वक मेरा ही पूजन करते हैं ॥२३॥ ॥२३॥

मू० ॥ अहं हि सर्बयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च न तु मामभिजानंति तत्वेनातश्च्यवंति ते ॥ टी०

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और फल दाता मैं परमेश्वर ही हूँ परंतु

पूर्वोक्त सकामउपासकमेरेवास्तवस्वरूपकोनहीजानतेइसलि
येवेजन्ममरणकोहीप्राप्तहोतेरहतेहैं॥ ॥२४॥

मू॰॥ यांतिदेवव्रतादेवान् पितॄन्यांतिपितृव्र
ताः॥ भूतानियांतिभूतेज्यायांतिमद्याजि
नोपिमाम् ॥टी॰॥ देवताओंकेपूजनेवालेदेवतापि
त्रोंकेपूजकपित्रऔरभूतोंकेपूजनेवालेभूतहीहोतेहैं औ
रमेरेभक्तमुझेप्राप्तहोतेहैं॥ ॥२५॥

मू॰॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छ
ति॥ तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः
॥टी॰॥ मेरेभक्तश्रद्धाऔरभक्तिसमेतपत्रपुष्पफलज
लजोकुछसुद्धबुद्धिवालेहोकरमुझेअर्पणकरतेहैंउसमैं
अंगीकारकरताहूँ॥ ॥२६॥

मू॰॥यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददा
सियत् ॥ यत्तपस्यसिकौंतेयतत्कुरुष्वम
दर्पणम् ॥टी॰॥ इसलिये हेअर्जुन तूभोजनहोम
दानतपआदिजोकुछकर वहसवमुझेहीअर्पणकर॥२७

मू॰॥शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्मबंधनैः॥

संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि

॥टी०॥ तो ऐसे भजन के प्राप्त होने से मैं तुझ कूं इष्ट अनिष्ट फ

लवाले कर्मबंधन से छोडाय संन्यासयोगयुक्त आत्मा कर मोक्ष

कोप्राप्त करूंगा ॥ ॥२८॥

मू०॥ समोहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः

॥ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

॥टी०॥ यद्यपि मैं परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियों में समान हूं

परंतु जो पुरुष भक्ति युक्त मेरा शेवन करते हैं वे मैं परमेश्वर के हृद

य में रहते हैं और मैं उनके हृदय में रहता हूं ॥ ॥२९॥ ॥

मू०॥ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभा

क्॥ साधुरेव समंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि

सः॥टी०॥ अत्यन्त दुराचारी पुरुष भी अनन्यचि

त होकर मेरा भजन करने से निःसंदेह साधु हो जाते है॥ ३०॥

मू०॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निग

च्छति॥ कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रण

स्यति ॥टी०॥ पूर्वोक्त पुरुष सीघ्रही धर्मात्मा होकर

नित्य शांति को प्राप्त होते हैं इसलिये हे अर्जुन मेरा भक्त नष्ट न

॥३१॥ ही होजा ॥३१॥

मू०॥ मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेपिस्युःपापयोन
यः॥ स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियांतिप
रांगतिम्॥ टी०॥ हेअर्जुनमेरेशरणमेंप्राप्तहोपाप
योनिवालेस्त्रियांबैश्यशूद्र एसम्पूर्णभी निःसंदेहपरमगति
कोप्राप्तहोतेहैं॥ ॥३२॥

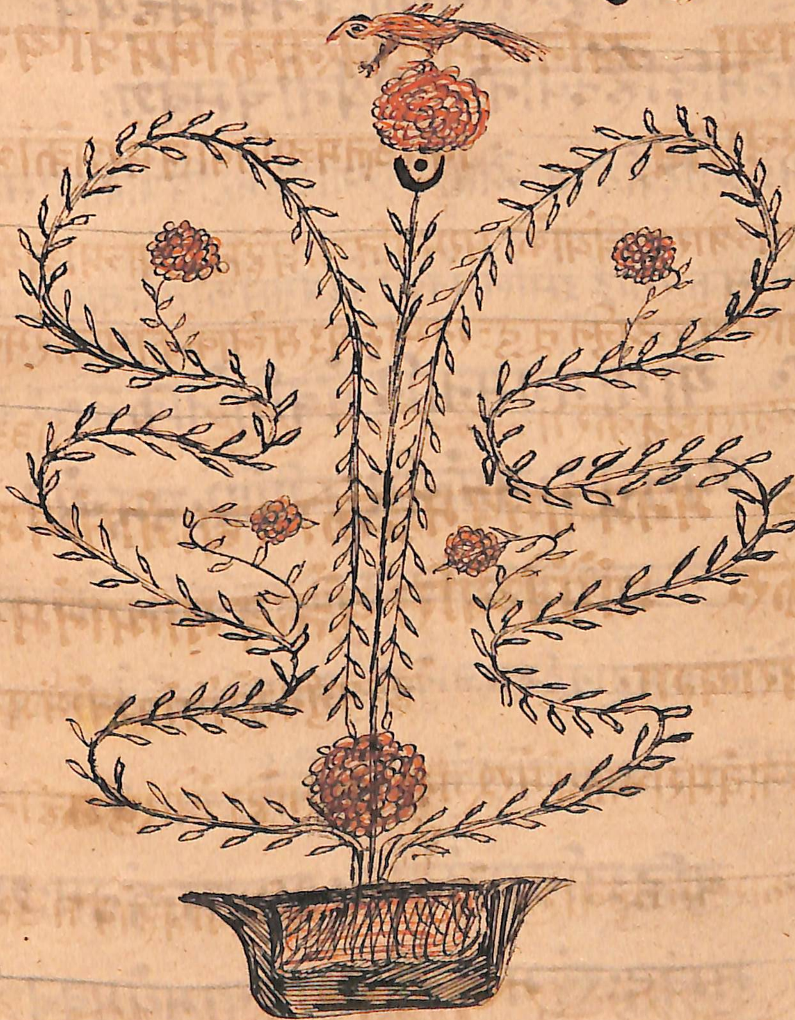
मू०॥ किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्ताराजर्षय
स्तथा॥ अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभ
जस्वमाम्॥ टी०॥ फिरउत्तमजातिवालेमेरेभक्तोंब्रा
ह्मणऔरक्षत्रियोंको परमगतिप्राप्तहोना क्याआश्चर्यहै
इसलियेहेअर्जुन तूदुःखस्वरूपइसलोककोपाकरमेरा
हीआराधनकर॥ ॥३३॥

मू०॥ मनमनाभव मद्भक्तो मद्याजीमांनम
स्कुरु॥ मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानंम
त्परायणः॥ टी०॥ हेअर्जुनतूमेंपरमेश्वरमेंमन
वालावमेराभक्तवमेरेभजनपरायणहोऔरमुझकोहीन
मस्कारकरताहुवामुझमेजुडकरमुझेप्राप्तहोवैगा॥ ३४॥



हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म वि
द्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे रा
जविद्याराजगुह्यं योगो नाम ॥ ९ ॥ नवमो
ऽध्यायः श्री कृष्णार्पणमस्तु शुभम्



श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मू॰ ॥
भूयएवमहाबाहो शृणुमेपरमंवचः ॥ यत्तेहं
प्रियमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ टी॰ ॥
हेअर्जुनतूमुझेअत्यन्तप्रियहै इसलियेमैंतेरेहितकेलियेव
चनकहताहूँ उन्हेसुन ॥ ॥ ॥१॥
मू॰ ॥ नमेविदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः ॥
अहमादिर्हिदेवानांमहर्षिणांचसर्वशः ॥ टी॰
॥ मैंइन्द्रादिकदेवता औरभृगुआदिकमहर्षियोंकाभीसव
प्रकारसेकारणहूँ इसलियेवेभीमेरेप्रभावकोनहीजानते ॥ २॥
मू॰ ॥ योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वर
म ॥ असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥
टी॰ ॥ जोपुरुषमुझेजन्मसेरहितकारणसेरहितऔरसम्पू
र्णलोकोंकामहानईश्वरजानतेहैं वेसम्पूर्णमनुष्योंमेव्याकुल
तासेरहितहोकरसवपापोंसेछूटजातेहैं ॥ ० ॥ ३ ॥ ० ॥
मू॰ ॥ बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहःक्षमासत्यंदमःश
मः ॥ सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥

टी० ॥ बुद्धिज्ञान अव्याकुलता क्षमा सत्य दमशम सु
खदुःख उत्पत्ति नाश भय अभय ॥ ॥४॥

मू० ॥ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽ
यशः ॥ भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्वि
धा ॥ टी० ॥ अहिंसा समता संतोष तप दान यश अपयश
आदि संपूर्ण प्राणियों में मैंही उत्पन्न किया करता हूं ॥५॥

मू० ॥ महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥ म
द्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ टी०
॥ भृगु आदिक सप्त महर्षि व सनकादिक और स्वायम्भू आ
दिक चौदह मनु जिनकी मेरे मनके संकल्पसे उत्पत्ति है और
सम्पूर्ण सृष्टि उन्हींकी प्रजा है वे भी मेरे परमेश्वरहीसे उत्पन्न हुए हैं
॥६॥

मू० ॥ एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
॥ सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ०
टी० ॥ जो पुरुष मेरे परमेश्वर के पूर्वोक्त विभूतियों और यो
ग को यथार्थ जानते हैं वे निःसंदेह अचल योगमें युक्त होते हैं ॥
॥७॥

मू० ॥ अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ इ
ति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ टी०

मैंपरमेश्वरहीसम्पूर्णजगतकेउत्पत्तिकाकारणहूं औरमैंपरमेश्वरहीसे सबप्रवृत्ति होतीहैं इसप्रकारजाननेवाले बुद्धिमानपुरुषप्रेमरूपभावसेमनमुझेभजतेहैं॥ ॥८॥

मू॰॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥ कथयंतश्च मांनित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ टीका॥ जिनकाचित्तमुझमेंहै व जिनकेमनइन्द्रियादिकोंकेव्यापारकेवल मेरीप्राप्तिकेलिये हैंऔर मेरीहीबोधकरतेहुएमेरीकथाकहतेहैंऐसेमेरेभक्तसंतोषकोप्राप्तहोकर सुखीहोतेहैं॥ ॥९॥

मू॰॥ तेषांसततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥ ददामिबुद्धियोगंतं येनमामुपयांतिते ॥ टी॰॥ जोपुरुषअपनीबुद्धिकोमैंपरमेश्वरमेंनिरन्तरएकाग्रकरकेप्रीतिसेमतमेरा भजनकरतेहैंउन्हेंमैंकृपाकरकेबुद्धियोग देताहूं जिसेप्राप्तहोकरवेमुझेअपनाआत्माहीजानतेहैं॥ ॥१०॥

कं

मू॰॥ तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः॥ नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता॥

टी०॥ तिन पूर्वोक्त भक्तजनोंपर अनुग्रह करके मैं उनके हृदय में
स्थित होकर ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाश करके अज्ञान रूपी अंधेरा
को नष्ट कर देता हूँ ॥ ११ ॥

मू०॥ अर्जुन उवाच ॥ परंब्रह्म परंधाम पवित्रं
परमं भवान् ॥ पुरुषं शाश्वतं दिव्यं मादिदेव
मजं विभुम् ॥ टी०॥ हे भगवान परंब्रह्म परम धाम परम
पवित्र उत्तम पुरुष शाश्वत दिव्य आदिदेव अज विभु आप ही हो ॥ १२

मू०॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा र
॥ असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥
टी०॥ क्योंकि भृगु आदिक ऋषि देव ऋषि नारद असित देव
ल और व्यास आदिकों ने पूर्व काल में मुझ से ऐसे ही वर्णन किया है
और अब इस समय आप भी कहते हो ॥ १३ ॥

मू०॥ सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥
टी०॥ हे भगवन आप जो यह कहते हो कि मेरे प्रभाव को देवता
और दानव कोई भी नहीं जानते उससे मैं सत्य ही मानता हूँ ॥ ॥१४॥

मू०॥ स्वयमेवात्मनाऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम

भूतभावनभूतेशदेवदेवजगत्पते ॥टी०॥ हेपुरुषोत्तमभूतभावनभूतेशदेव देवजगत्पते औरोंकेउपदेशकेविनाहीआपअपनेआत्माकोजानतेहो ॥ ॥१५॥

मू०॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्याह्यात्मविभूतयः॥ याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि ॥टी०॥ हेसमर्थआप अपनीजिनदिव्यविभूतियोंकरकेसम्पूर्णलोकोंमेंव्याप्तरहेहो उन्हेंवर्णनकरो ॥ ॥१६॥

मू०॥ कथंविद्यामहंयोगिंस्त्वांसदापरिचिंतयन ॥ केषुकेषुचभावेषुचिंत्योसिभगवन्मया ॥टी०॥ हेयोगिनमैंआपकाकिनकिनवस्तुओंमेंकिसप्रकारध्यानऔरचिंतनकरूं ॥ ॥१७॥

मू०॥ विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिंचजनार्दन ॥भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेऽमृतम् ॥टी०॥ हेजनार्दनमैंआपकेअमृतरूपीवचनोंकोकानोंकेद्वारापानकरतेहुएतृप्तनहीहोताइसलियेआपअपनीविभूतियोंकोविस्तारसेवर्णनकरो ॥ ॥१८॥

मू०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंततेकथयिष्यामि

दिव्याह्यात्मविभूतयः ॥ प्राधान्यतः कुरु

श्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्यमे ॥ टी० ॥ हे अर्जुनमे

रविभूतियांकुसरिमाराहैं इसलियेप्रसिद्धऔरदिव्यविभूति

योंकोवर्णनकरताहूं ॥ ॥ १९ ॥

मू० ॥ अहमात्मागुडाकेश सर्वभूताशयस्थि

तः ॥ अहमादिश्च मध्यंचभूतानामंतएवच

॥ टी० ॥ हेअर्जुनसम्पूर्णभूतोंकेहृदयमेंचैतन्यआनंदमैंहीहूं

इसलिये सम्पूर्णभूतोंकीउत्पतिस्थितऔरविनाशभीमैंहीहूं ॥

मू० ॥ आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशु

मान् ॥ मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहंशशी

॥ टी० ॥ आदित्योंमेविष्णुप्रकाश्कोंमें सूर्यपवनोंमेमरीचि

नक्षत्रोंमेंचन्द्रमा मैंहीहूं ॥ इतिसमाप्तः ॥ ० ॥ २१ ॥ ० ॥

मू० ॥ वेदानांसामवेदोस्मि देवानामस्मिवा

सवः ॥ इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानाम

स्मिचेतना ॥ टी० ॥ वेदोंमेंशामवेददेवताओंमेंइन्द्र

इन्द्रियोंमेंमनभूतोंमेचैतन्यतामैंहीहूं ॥ ० ॥ २२ ॥ ०

मू० ॥ रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशोयक्ष

रक्षसाम् ॥ वसूनांपावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ टी० ॥ रुद्रोंमे शंकर यक्ष राक्षसोंमें कुवेर वसुवोंमेंअग्नि रत्नवालेपर्वतोंमें सुमेरु पर्वतमें हीहूँ ॥२३॥

मूल० ॥ पुरोधसांच मुख्यंमां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥ सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ टी० ॥ सम्पूर्ण पुरोहितोंमें बृहस्पति सेनापतियोंमेंस्कंद स्थिरजलसमूहोंमें समुद्रमेंहीहूँ ॥ ० ॥२४॥ ० ॥

मू० ॥ महर्षीणांभृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥ यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ टी० ॥ महाऋषियोंमेंभृगुसम्पूर्णवाणियोंमें ॐकाररूपएकअक्षर यज्ञोंमेंजपयज्ञ औरस्थावरोंमें हिमालयमेंहीहूँ ॥२५॥

मू० ॥ अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणांच नारदः ॥ गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानांकपिलोमुनिः ॥ टी० ॥ सम्पूर्णवृक्षोंमेंपीपर देवऋषियोंमे नारद गंधर्वोंमेंचित्ररथ सिद्धों में कपिलमुनि मेंहीहूँ ॥२६॥

मू० ॥ उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥ ऐरावतं गजेंद्राणां नराणांच नराधिपम् ॥ टी० ॥ सम्पूर्णघोडोंमे उच्चैश्रवा हाथियोंमे ऐरावतम

नुष्योंमें राजारूपमैं हीहूं ॥ ॥२७॥

मू० ॥ आयुधानामहं बज्रं धेनुनामस्मि कामधुक् ॥ प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि बासुकिः ॥ टी० ॥ सम्पूर्ण हथियारोंमें बज्र गाइयोंमें कामधेनु सम्पूर्ण कन्दर्पोंमें प्रजाको उत्पत्ति करनेवाला काम और सर्पों मेंबासुकी मैंहीहूं ॥ ॥२८॥

मू० ॥ अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥ पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमनामहम् ॥ टी० ॥ नागोंमेशेष जलचरोंमें बरुण पितरोंमें अर्यमान्या याधीशोंमें यमराज मैंहीहूं ॥ ॥ २९ ॥ ॥

मू० ॥ प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥ मृगाणां च मृगेंद्रोहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ टी० ॥ दैत्योंमें प्रह्लाद संख्यागननेवालों में काल मृगादिक सम्पूर्ण पशुओंमें सिंह पक्षियोंमें गरुड मैं हीहूं ॥३०

मू० ॥ पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥ झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ टी० ॥ पवित्रकारकोंमें पवन शस्त्रधारियोंमें राम मछलियोंमें

मकर औरनदियोंमेंगंगामैंहीहूं ॥ ॥३१॥

मू॰ ॥ सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥ अध्यात्मविद्याविद्यानांबादःप्रवदतामहम ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनअचेतनरूपसम्पूर्णकार्योंकीभीउत्पत्तिस्थितऔर नाशमैंहीसेहोतीहै ॥ औरसम्पूर्णविद्याओंमें अध्यात्मविद्या और बिबादकरनेवालेपुरुषोंमेंतत्वसिद्धिबादमैंहीहूँ ॥ ॥०॥३२॥०॥

मू॰ ॥ अक्षराणामकारोस्मिद्वंदःसामासिकस्यच ॥ अहमेवाक्षयःकालोधाताऽहंबिश्वतोमुखः ॥ टी॰ ॥ अक्षरोंमें अ समासोंमें द्वन्द नाशसेरहितकाल औरफलदेनेवालोंमेंसम्पूर्णफलोंका देनेवाला अन्तयमी इस्वरमैंहीहूँ ॥ ॥३३॥

मू॰ ॥ मृत्युःसर्बहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यताम ॥ कीर्तिःश्रीर्बाक्यनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ॥ टी॰ ॥ नष्टकरनेवालोंमें मृत्युकल्याणभाभीकीश्रेष्ठउत्पत्तिऔर स्त्रियोंमें कीर्तिश्रीवाक्स्मृतिमेधाधृतिक्षमाये धर्मकी सात पत्नियांमैंहीहूँ ॥ ॥३४॥

मू॰ ॥ बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रीछंदसामह

मू॰ ॥ मासानांमार्गशीर्षोहमृतूनांकुसुमाकरः

॥टी॰॥ शामबेदमें इन्द्रकीस्तुतिरूपगीतबिशेषछन्दोंमेगाय
त्रीमहीनोंमेंअगहनऔरऋतुओंबसंतऋतुमेंहींहूं॥ ॥३५॥ ॥

मू॰ ॥ द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनाम
हम् ॥ जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्वंसत्ववता
महम् ॥टी॰॥ छलकारीपुरुषोंमेंयुवातेजस्वियोंकातेज
जीतनेवालेपुरुषोंकीजीतरोज़गारियोंकारोज़गारसत्यताधार
णाकरनेवालेपुरुषोंमेंसत्यमेंहीहूं॥ ॥३६॥

मू॰ ॥ बृष्णीनांबासुदेवोस्मिपांडवानांधनंज
यः ॥ मुनीनामप्यहंव्यासःकबीनामुशनाक
विः ॥टी॰॥ यदुवंशियोंमेंबासुदेवपांडवोंमेंअर्जुनमुनियों
मेंव्यासकबियोंमेंशुक्रमेंहीहूं॥ ॥३७॥

मू॰ ॥ दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीष
ताम् ॥ मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानव
तामहम् ॥टी॰॥ शिक्षाकरनेवालेपुरुषोंकादंडजीत
नेकीइच्छावालेपुरुषोंकीजीतछिपानेवालेपदार्थोंमेंमौनज्ञान
वानपुरुषोंमेंज्ञानमेंहीहूं॥ ॥३८॥

यच्चापिसर्बभूतानांबीजंतदहमर्जुन॥ ननत
स्तिबिनायत्स्यांन्मयाभूतंचराचरम्॥ टी०॥
सम्पूर्णप्राणियोंमेंबीजरूपजीवनमैंहूं हेअर्जुनमुझसेअलगच
राचरकुछभीनहीहै॥ ॥ ३९॥

मू०॥ नांतोस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरं
तप॥ एषतूंद्देशतः प्रोक्तोबिभूतेर्बिस्तरो
मया॥ टी०॥ मेरीदिव्यविभूतियोंकाभीअन्तनहींहैए
कदेशकेविचारसेहमनेपूर्बोक्तविभूतियांतुमसेवर्णनकिया॥ ४०॥

मू०॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्वंश्रीमदूर्जितमेव
वा॥ तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंशसंभवम्
॥ टी०॥ जिसजिसकोतूंजिसऐश्वर्यवालादेखउसेमेंरेही
तेजअंशशेउत्पन्नहुवाजान ॥ ४१॥

मू०॥ अथवाबहुनैतेनकिंज्ञातेनतवार्जुन॥
बिष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोज
गत्॥ टी०॥ हेअर्जुनइसबहुतजाननेसेतुम्हाराक्याप्र
योजनसिद्धिहोगाइससम्पूर्णजगतकोमेरेएकअंशमेंस्थि
तजानो॥ ४२॥ ॥ ४२॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इति श्रीभगद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्या
यांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभू
तियोगोनाम दशमो ॥१०॥ ऽध्यायः॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु श्रीरामचन्द्रायनमः॥



श्री गणेशायनमः ॥ अर्जुनउवाच ॥ मू॰ ॥ मदनुग्रहाय परमंगुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥ यत्वयोक्तं बचस्तेन मोहोयंबिगतोमम ॥ टी॰ ॥ हे भगवन जो आपने मेरे हितके लिये अत्यन्त छिपीहुई ब्रह्मबिद्याका प्रत्यक्ष उपदेश कियाउसेसुनकर मेरा सम्पूर्णमोह नष्ट होगया ॥ १ ॥

मू॰ ॥ भवाप्ययोहि भूतानां श्रुतौबिस्तरशोमया ॥ त्वत्तःकमलपत्राक्ष माहात्म्यमपिचाब्ययम् ॥ टी॰ ॥ हे कमलपत्राक्ष भगवान मैंने अवयह जनाकी सम्पूर्णभूतोंकी उत्पत्तिपालन और प्रलय आपहीसे होती है और आपके सोपाधिक और निरूपाधिक अव्यय रूपमाहात्म्यकोभी मैंने सुना ॥ २ ॥

मू॰ ॥ एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानं परमेश्वर ॥ द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ टी॰ ॥ हे परमेश्वर आपने जो सम्पूर्णभूतोंके आत्मा रूप अपनेको बरानकिया सो यथार्थहीहै परन्तु मैं आपके ऐश्वर्यको प्रत्यक्ष दरवनेकी इच्छाकरताहूं ॥ ३ ॥

मू० ॥ मन्यसेयदितच्छक्यंमयाद्रष्टुमितिप्र
भो ॥ योगेश्वर ततोमेत्वंदर्शयात्मानमव्ययम्

॥टी०॥ हे परमेश्वर जो मैं आपके ऐश्वर्य के देखने के योग्य हो
ऊं तो आप मुझे अपने अव्यय आत्मा स्वरूप का साक्षात् दर्शन
कराइये ॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्यमेपार्थरूपाणि
शतशोथसहस्रशः ॥ नानाविधानिदिव्या
नि नानावर्णाकृतीनिच ॥टी०॥ हे अर्जुन अने
क प्रकार के वर्ण व आकृति वाले मेरे सैकड़ों बल्कि हजारों दि
व्यरूपों को तू देख ॥ ॥५॥

मू० ॥ पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुत
स्तथा ॥ बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणि
भारत ॥टी०॥ हे अर्जुन आदित्यों वसुओं रुद्रों अश्वि
नीकुमारों मरुतों और पहिले कभी नहीं देखे हुए बहुत से
अद्भुत रूपों को भी देख तू ॥ ॥६॥

मू० ॥ इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचरा
चरम् ॥ ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमि
च्छसि ॥टी०॥ हे अर्जुन इह मोरे इस देह के एक छोटे अंश में

स्थावरजंगमसहितसम्पूर्णजगतको औरहारजीतआदिको
भीजिसेदेखनेकीतुझेइच्छाहैसोसबदेख ॥०॥७॥०॥

मू० ॥ नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा
॥ दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम्
॥टी०॥ हेअर्जुनतूइनचमडेकीआंखोंसेमेरेदिव्यरूपको
नहींदेखसक्ता इसलियेमैंतुझेउत्तमआंखेंदेताहूं जिनसे
मेरेऐश्वर्यरूपयोगकोतूदेख ॥ ॥८॥ ॥

मू०॥ संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्
महायोगेश्वरोहरिः ॥ दर्शयामासपार्थाय
परमंरूपमैश्वरम् ॥टी०॥ हेधृतराष्ट्र श्रीकृष्णभ
गवाननेइसप्रकारअर्जुनसेकहकरअपनेदिव्यऐश्वर्यको
दिव्यचक्षुद्वाराउसेदेखाया ॥ ॥९॥

मू० ॥ अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणांदिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥
टी०॥ हेराजाअनेकमुखनेत्रऔरअनेकअद्भुतवस्तुओं
कादर्शनहैजिसमेंऔरअनेकउत्तमभूषणऔरहथियार
धारणाकियेहैंजिसनेऐसेरूपकोभगवाननेदेखाया ॥१०॥

मू० ॥ दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ टी० ॥ हे राजा उत्तम माला और कपड़ा धारण किया है जिसने और उत्तम सुगंधित वस्तुओं का लेप है जिसमें ऐसे आश्चर्य और प्रकाशमय सब ओर से मुख वाले अनंतरूप को दिखाया ॥

मू० ॥ दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥ यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ टी० ॥ आकाश में एक ही समय हजारों सूर्य प्रकाशित हो जावें तो वह सम्पूर्ण प्रकाश उस विश्वरूप प्रकाश के बराबर कहा जा सक्ता है ॥ ॥ १२ ॥

मू० ॥ तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥ अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ टी० ॥ हे राजा जिस समय अर्जुन ने देवताओं करके पूज्य भगवान के विश्वरूप शरीर के एक हिस्से में अनेक प्रकार के नये नये सम्पूर्ण जगत के देवतादिकों को अलग अलग देखा ॥ ॥ १३ ॥

मू० ॥ ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥ प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ टी० ॥ हे राजा तब अर्जुन विस्मययुक्त और पु

लकायमान होभगवंतके सन्मुख हो अपना मस्तक झुकाय नमस्कार करदोनो हाथ जोड ऐसे कहने लगे ॥ ॥१४॥

मू० ॥ अर्जुन उवाच ॥ पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ टी० ॥ हे भगवन् मैं आपके इस विश्वरूप में संपूर्ण देवताओं और स्थावर जंगमरूप संपूर्ण भूतों व कमलासनमें स्थित ब्रह्मा और ऋषियों व दिव्य सर्पोंको देखता हूं ॥१५॥

मू० ॥ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोनंतरूपम् ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ टी० ॥ हे विश्वरूप परमेश्वर आपके इस अनेक बाहु उदर मुख नेत्र और रूपवाले विश्वरूपको मैं देखता हूं आपके आदि अंत और मध्यको नहीं देखता हूं मैं ॥ ॥॥२६॥॥

मू० ॥ किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥

टी० हे भगवन मुकुट गदा चक्र धारण करनेवाले तेजमय सब
ओरसे प्रकाशमान देखनेके अयोग्य प्रकाशित सूर्यवत प्रज्वलि
त अग्निकी ज्योतिकी तरह आपके इस अद्वितीय रूपकों मैं स
ब ओरसे देखता हूँ ॥ ॥१७॥

मू० ॥ त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विस्व
स्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतध
र्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ टी० ॥
हे भगवन परम अक्षर जानने योग्य इस जगतके आधार अव्यय
धर्मके पालक सनातन परमात्मा पुरुष मेरे मनमें आप हो ॥

मू० ॥ अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबा
हुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुता
शवक्त्रं स्वतेजसा विस्वमिदं तपंतम् ॥ टी० ॥
हे भगवन उत्पत्ति स्थित नाश शे रहित अनंतप्रभाव और भुजवा
ले और सूर्यचन्द्रमा नेत्रवं प्रज्वलित अग्नि है मुखमें जिसके
और अपने तेजसे संपूर्ण संसारको तपायमान करनेवाला ए
से आपके विश्वरूपको मैं देखता हूं ॥ ॥१९॥

मू० ॥ द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं

त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूप
मुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्
॥टी०॥ हे भगवन पृथ्वी स्वर्ग आदि में सब जगह एक आ
पही अन्तरीक्षरूपसे व्याप्त होरहे हो और आपके इस अद्भुत
उग्ररूपको देष कर तीनों लोक अत्यन्त भयभीत होरहे हैं ॥२०
मू०॥ अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति केचिद्भी
ताः प्रांजलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा म
हर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पु
ष्कलाभिः ॥टी०॥ हे भगवन सम्पूर्ण देवता ओं के स
मूह आपही में प्रवेश होते हैं और कोई पुरुष भयभीत हो दोनों
हाथ जोड स्तुति करते हैं और महा ऋषि सिद्धि पुरुष इस जगत
का कल्यान हो ऐसा कहते हुए परिपूर्ण अर्थबोधक वचनों कर
के आपकी स्तुति करते हैं ॥ ॥२१॥
मू० ॥ रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वे
ऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षा
सुरसिद्धसंघा वीक्षंते त्वां विस्मिताश्चैव स

वे ॥टी०॥ हेभगवनरुद्रआदित्य बशुसाध्यविश्वेदेवअश्विनीकुमार मरुतउष्मपागंधर्वयक्षअसुरऔरसिद्धोंकेसमूहयेसबआपकेरूप कोदेख नेहुएभयभीन होरहेहैं ॥ ॥२२॥ विश्व

मू० ॥ रूपंमहत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाःप्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥टी०॥ हेभगवनअत्यन्तमहानऔरबहुतमुखनेत्रबाहुउरपैरऔरउदरबालाऔरकरालदांतोंसेअत्यन्तभयानकऐसेआपकेइसविश्वरूपकोदेखकर हम संपूर्णप्राणीभयभीनहोरहेहैं ॥ ॥२३॥

मू० ॥ नभस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितान्तरात्मा धृतिंनविंदामिशमंचविष्णो ॥ टी० ॥ हेविष्णुभगवान अनेकरंगवाला विश्वरूपफैलायेहुएमुखऔरप्रकाशितविशालनेत्रहैंजिसमेंऐसेआपकेरूपकोदेखमैंडरगयाहूंइसलियेमेरामनअच्छेप्रकारसेंघैर्यहोस्थिरताकोनहीप्राप्तहोताहै ॥ ॥२४॥



विश्वरूपदर्शनयोगनाम एकादशोऽध्यायः

मू॰॥ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव काला नलसन्निभानि ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ टी॰॥ हे भगवन कराल दांतों से भयंकर और प्रलय के अग्नि की तुल्य आपके मुखों को देखकै मैं सुख से रहित हो दिशाओं को भूल गया हूं इस लिये हे देवेश हे जगन्निवास हमपर प्रसन्न होओ ॥ ॥ २५ ॥ ॥

मू॰॥ अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ टी॰॥ हे भगवन दुर्योधन आदिक धृतराष्ट्र के पुत्र अपने पक्ष के राजाओं और भीष्म द्रोण कर्ण समेत अपने पक्ष के योधाओं सहित आपके मुख में प्रवेश करते हुए देख पडते हैं ॥ २६ ॥

मू॰॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ टी॰॥ और उनमें से कोई कोई योधा श्रेष्ठ मस्तकों समेत आपके कराल दांतों से चूर्ण हुए उन्हीं दांतों के संधियों में लपटे हुए देख पडते हैं

मू॰ ॥ यथानदीनांबहवोंबुवेगाःसमुद्रमेवा
भिमुखाद्रवंति ॥ तथातवामीनरलोकवीरा
विशंतिवक्राण्यभितोज्वलंति ॥टी॰॥ जैसे
नदियोंद्वाराजलसमूहअत्यन्तवेगसेबहताहुवासमुद्रकोजा
ताहैऐसेहीएमनुष्यलोककेसम्पूर्णबीरआपकेमुखमेंशीघ्र
तासेप्रबेशकरतेहैं॥ ॥२८॥

मू॰ ॥ यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगाविशंतिना
शायसमृद्धवेगाः ॥ तथैवनाशायविशंतिलोका
स्तवापिवक्राणिसमृद्धवेगाः ॥टी॰॥ हेभगव
नजैसेपतंगअपनेनाशकेलियेअत्यन्तवेगसेप्रज्वलितअग्नि
मेंप्रवेशहोतेहैंऐसेहीएदुर्योधनादिकअपनेनाशकेवास्ते
अत्यन्तशीघ्रतासेआपकेमुखोंमेंप्रवेशहोतेहुएदेखपडतेहैं
२९

मू॰ ॥ लेलिह्यसेग्रसमानःसमंताल्लोकान्स
मग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्यजग
त्समग्रंभासस्तवोग्राःप्रतपंतिविष्णो ॥टी॰॥
हेविष्णुभगवानआपसम्पूर्णलोकोंकोअपनेप्रज्वलितमु
खोंमेसबओरसेस्वादसेमेनखातेहुएदेखपडतेहैंऔरआ

पकोअत्यन्तप्रज्वलितप्रका शसवओरसेपरिपूर्णदेखपड़ता
हैजिसेदेखअत्यंत दुःखहोताहै॥ ॥३०॥

मू॰॥ आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपो नमोस्तुते
देववरप्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं
नहिप्रजानामितवप्रवित्तिम् ॥टी॰॥ हेभगवनऐ
सेभयानकरूपवालेओरसम्पूर्णदेवताओंसेश्रेष्ठआपकोनहीं
हैसम्पूर्णजगत्केकारणमैंआपकोनमस्कारकरकेजाननेकीइच्छा
करताहूँ॥

मू॰॥ श्रीभगवानुवाच ॥कालोस्मिलोकक्ष
यकृत्प्रवृद्धोलोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्तः॥
ऋतेऽपित्वांनभविष्यंतिसर्वेयेऽवस्थिताः
प्रत्यनीकेषुयोधाः॥टी॰॥ हेअर्जुनमैंसम्पूर्ण
लोकोंकोनष्टकरनेवालाकालरूपपरमेश्वरइससमयवृद्धि
कोप्राप्तहुवादेखपड़ताहूँदुर्योधनादिकोंकोनष्टकरनेको
प्रगटहुवाहूँतुम्हारेयुद्धनकरनेकीहालतमेंभीयेमुझसेनब
चेंगे॥ ३२

मू॰॥ तस्मात्त्वमुत्तिष्ठयशोलभस्व जित्वाश
त्रून्भुंक्ष्वराज्यंसमृद्धम् ॥ मयैवैतेनिहताःपू

वैमेवनिमित्तमात्रंभवसव्यसाचिन् ॥टी०॥
इसलियेतूशत्रुओंकोजीतयश प्राप्तकरतत्कुवानिष्कंटकराज्य
करतुम्हारेयुद्ध करनेसेपहिलेहीमैंनेइन्हेंमाररक्खाहै तूकेवल
निमित्त मात्रहीहोताहै॥ ॥।३३॥।
मू० ॥द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णंतथा
ऽन्यानिपियोधवीरान् ॥ मयाहतांस्त्वंज
हिमाव्यथिष्ठायुध्यस्वजेताऽसिरणेसप
त्नान् ॥टी०॥ द्रोणभीष्मजयद्रथकर्णकिसीवायऔ
रभीश्रेष्ठयोधाओंकोमैंनेपहिलेहीसेमाररक्खाहैइसलिये
तूभयसेरहीतहोयुद्धकरसंग्राममेंनिःसंदेहतूशत्रुओंजीतेगा०
मू०॥संजयउवाच ॥एतच्छ्रुत्वावचनंकेश
वस्यकृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ॥ नम
स्कृत्वाभूयएवाहकृष्णंसगद्गदंभीतभी
तःप्रणम्य ॥टी०॥ हेधृतराष्ट्र भगवानकेपूर्वोक्तबच
नोंकोसुनअर्जुनअत्यन्तभययुक्तऔरकम्पायमानहोदोनों
हाथजोड़श्रीकृष्णभगवानकेनमस्कारकरकेनम्रताकेसाथ
गद्गदवाणीसेस्तुतिकरनेलगे॥ ॥।३५॥।
मू०॥अर्जुनउवाच ॥ स्थानेहृषीकेशतवप्र

कीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥ रक्षांसि
भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे नमस्यंति च सिद्ध
संघा ॥ टी० ॥ हे हृषीकेश आपके प्रकीर्तिसि सम्पूर्ण राजि
गत प्रशन्न और प्रीतिमान होते हैं वराक्षस भयभीत होकर इधर उ
धर भागते हैं और सिद्धि लोग नमस्कार करते हैं यह सब उचित ही है।

मू० ॥ कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे
ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनंत देवेश जग
न्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ टी० ॥
हे महात्मन हे अनंत हे देवेश हे जगन्निवास आप ब्रह्मा के भी गुरु
और पितारूप हो ऐसे आपको सम्पूर्ण देवता नमस्कार क्यों न क
रैं किंतु करना ही चाहिये सत असत और इन दोनों से परे भी जो अक्षर
ब्रह्म है सो आप ही हो ॥० ॥ ॥३७॥ ॥

मू० ॥ त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य वि
श्वस्य परं निधानम् ॥ वेत्ताऽसि वेद्यं च परं
च धाम त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥ टी० ॥
अनंत परमेश्वर आदिदेव पुरुष पुराण और संसार के परम
आधार सर्व दृश्य परम धाम व्यापक आप ही हो ॥ ॥३८॥ ॥

मू० ॥ वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्र

जापतिस्त्वंप्रपितामहश्च ॥ नमोनमस्ते ६

स्तुसहस्रकृत्वः पुनश्चभूयोपि नमोनमस्ते

॥टी०॥ हेभगवनवायुयमअग्निवरुणचन्द्रमाँइन्द्रब्रह्माइ

त्यादिकसम्पूर्णदेवतारूपआपहीहौंऐसेआप परमेश्वरको

मेराहजारोंवारनमस्कार वारम्बार होवे ॥ ॥०॥३९॥०॥॥

मू०॥नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोस्तुतेस

र्वतएवसर्व ॥ अनन्तवीर्यामितविक्रम

स्त्वंसर्वंसमाप्नोषिततोसिसर्वः ॥टी०॥ हे

भगवनआपअनंतवीर्यऔरमहान पराक्रमवालेसबजगहव्या

प्तहोरहेहो इसलियेसबकेहेजातेहो आपकोसर्वकालमेंसु

बजगहसबओरसे मेरानमस्कारहोवे ॥ ॥०॥॥४०॥॥०॥॥

मू० ॥ सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्ण

हेयादवहेसखेति ॥ अजानतामहिमानं

तवेदंमयाप्रसादात्प्रणयेनवापि ॥टी०॥

हेभगवनमैंआपकेविश्वरूपऐश्वर्यकोनहीजानताथाइसलिये

केवलप्राकृतमित्रहीजानकरहेकृष्णहेसखाहेयादवआदि

वातेंजोनकहनेकेयोग्यथीमैंनेकहीहैउन्हेआपक्षमाकीजिये॥

मू० ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोसिविहा

र शय्यासनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाप्यच्युत
तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४

टी० ॥ हे अप्रमेय भगवान् हंसीके लिये बिहार सय्या आ
सन भोजन आदि में जो मैंने आप को अकेले अथवा सा
थियों के बीच में न करने योग्य व्यंग बातें कह कर अनादर
किया है उसे आप क्षमा कीजिये ॥ ० ॥ ४२ ॥ ० ॥

मू० ॥ पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वम
स्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समो
ऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेप्य
प्रतिमप्रभावः ॥ टी० ॥ हे सर्वोत्तमप्रभाववाले
भगवन् आप सम्पूर्ण चराचर के पिता पुज्य गुरु हो जब के तीनों
लोक में आप के बराबर को नहीं है तो अधिक कैसे हो सक्ता है ॥

मू० ॥ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्र
सादये त्वामहमीशमीड्यम् ॥ पितेव पु
त्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि
देव सोढुम् ॥ टी० ॥ हे भगवन् मैं आप को साष्टां
ग दंडवत करके स्तुति करते हुए अपने अपराधों को क्ष
मा चाहता हूं जैसे पिता पुत्र के अपराध को मित्र मित्र के

अपराध कोऔरपती स्त्रीकेअपराधको क्षमाकरतोहैऐसेहीआ
पमेरे अपराधोंकोक्षमाकीजिये ॥ ०॥०॥४४॥०॥ ॥

मू०॥ अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मिदृष्ट्वा भयेनचप्रव्य
थितंमनोमे ॥ तदेवमेदर्शयदेवरूपं प्रसीददेवेश
जगन्निवास ॥टी०॥ हेभगवनमैंनेआपकेइसविस्वरूप
कोपहिलेकभीनहींदेखाथाइसलियेप्रसन्नताकोप्राप्तहोंनेहुए
भयभीनहोगयाहूँ इसलियेहेदेवहेदेवेश हेजगन्निवासआपप्र
शन्नहोकरमुझेअपनापहिलाहीरूपफिरदेखलाइये ॥ ॥४५॥

मू०॥ किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छामित्वांद्र
ष्टुमहंतथैव ॥ तेनैवरूपेण चतुर्भुजेनसहस्र
बाहो भवविश्वमूर्ते ॥टी०॥ हेविश्वमूर्ति हजारोंभुजा
वालेभगवनआपमुझेमुकुटगदाऔरचक्रधारणकरनेवालेच
तुर्भुजरूपकोफिरदेखलाइये ॥० ॥ ॥४६॥ ॥

मू०॥ श्रीभगवानउबाच ॥ मयाप्रसंन्नेनतवार्जुने
दं रूपंपरंदर्शितमात्मयोगात ॥ तेजोमयंविश्व
मनंतमाद्यंयन्मेत्वदन्येननदृष्टपूर्वम ॥टी०॥
हेअर्जुनमैंनेप्रशन्नहोकरतुझेयहअपना विश्वात्मकविशेष
श्रेष्ठरूपदेखलायाहैक्योंकि तुमसेपहिलेमेरेइसतेजमय अनंत

अनादिविश्वरूपको किसीनेनहीं देषा ॥ ४७ ॥

मू॰ ॥ नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभि
र्नतपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपःशक्यअहंनृलोके
द्रष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रबीर ॥ टी॰ ॥ हेश्रेष्ठबीरअ
र्जुनइसमनुष्यलोकमेंतुम्हारेसिवायऔरोंको मेरायहविश्व
रूपवेदोंकेपढ़ने वश्रेष्ठयज्ञोंवतपस्यादानआदिकोंकेकर
नेसेदेखनेकोनहींमिलसक्ताहै ॥ ४८

मू॰ ॥ मातेव्यथामाचविमूढभावो दृष्ट्वारूपंघो
रमीदृङ्ममेदम ॥ व्यपेतभिःप्रीतमनाःपु
नस्त्वंतदेवमेरूपमिदंप्रपश्य ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन
तूमेरेइसकठिनरूपकोदेखविमूढभाववालाहोकरदुःखित
नहोप्रशन्नचित्तहोकरमेरे पहिलेहीरूपकोफिरदेख ॥ ४९ ॥

मू॰ ॥ संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथो
क्तास्वकंरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वास
यामासचभीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यबपुर्महा
त्मा ॥ टी॰ ॥ हेधृतराष्ट्रश्रीकृष्णभगवानेनधीरबीरअ
र्जुनसेऐसेकहकरउसेफिरअपना पहलारूपदिखलाया
औरपरमदयालहोकरभययुक्तअर्जुनकोधीरजदिया ५०

मू० ॥ अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेदंमानुषंरूपंतवसौ
म्यंजनार्दन ॥ इदानीमस्मिसंवृत्तः सचेताःप्र
कृतिंगतः ॥ टी० ॥ हेजनार्दनआपकेअत्यन्तसुन्दरमनु
ष्यरूपकोदेखकरमैं दुःख सेरहितहोकर शांतिकोप्राप्तहोगया।
मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सुदुर्दर्शमिदंरूपंदृष्ट
वानसियन्मम ॥ देवाअप्यस्यरूपस्यनित्यंदर्श
नकांक्षिणः ॥ टी० ॥ हेअर्जुनतुमनेमेरेजिसविश्वरूपको
अभीदेखाहैयहअत्यन्तदुर्लभहै इसलियेदेवताभीसर्वदाइसके
देखनेकीइच्छारखतेहैं ॥ ५२
मू० ॥ नाहंवेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया ॥ श
क्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टवानसिमांयथा ॥ टी०
॥ हेअर्जुनमेरायहविश्वरूपवेदोंकेअध्ययनतपदानऔरअ
ग्निहोत्रादिककर्मकेकरनेसेभीदेखनेकोनहींमिलता ॥ ५३
मू० ॥ भक्त्यात्वनन्ययाशक्यअहमेवंविधोऽ
र्जुन ॥ ज्ञातुंद्रष्टुंचतत्वेनप्रवेष्टुंचपरंतप ॥०
टी० ॥ हेअर्जुनमेराविश्वरूपअनन्यभक्तिकरनेसेऔरत
त्वसाक्षात्कारकरकेअभेदरूपसेप्रवेशहोनेमेप्राप्तहोताहै ॥
मू० ॥ मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जि

॥ ६९ ॥ तः ॥ निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५
।भ॰ गी॰। टी॰ ॥ हे अर्जुन जो पुरुष मेरे लिये कर्म करता है और मैं ही हूँ
अ॰ ११ परम प्रयोजन जिस्को व संगसे रहित सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्वैर
ऐसा मेरा भक्त अभेदरूप होकर मुझे प्राप्त होता है ॥ ॥५५॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्या
यां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विश्वरू
पदर्शनं योगो नामैकादशो ॥११॥ ऽध्यायः ॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु श्रीरामचन्द्राय नमः ॥



श्रीगणेशायनमः ॥ अर्जुनउवाच ॥ मू० ॥ एवंस
ततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्युपासते ॥ येचाप्य
क्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः ॥ टी० ॥ हेभग
वनइसप्रकारआपकेनिरंतरयुक्तसगुणऔरनिर्गुणउपासकों
मेंकौनश्रेष्ठहै ॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्यमनोयेमां
नित्ययुक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेतास्ते
मेयुक्ततमामताः ॥ टी० ॥ हेअर्जुनजोपुरुषअपने
मनकोमैंसगुणब्रह्ममेंएकाग्रकरऔरसात्विकीश्रद्धासमे
तनित्ययुक्तहोमैंसाकारब्रह्मकोसेवनचिंतनकरतेहैंवेअत्य
न्तश्रेष्ठहैं ॥ ॥२॥

मू० ॥ येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिन्त्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥ टी०
॥ संनियम्येंद्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः तेप्राप्नुवंतिमामेवसर्व
भूतहितेरताः ॥ ० ॥ जोपुरुषसम्पूर्णइन्द्रियोंकोआधीनकर
सर्वत्रसमबुद्धिवालेऔरसम्पूर्णप्राणियोंकेहितमेंप्रीतिवाले
होअनिर्देश्यअव्यक्तसर्वत्रव्यापकअचिन्त्यकूटस्थअचल
ध्रुवऐसेनिर्गुणब्रह्मकोसर्वदाचिंतनकरतेहैंवेभीमुझेहीप्राप्तहोतेहैं ॥

॥३॥४॥ ॥०

मू॰ ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचे
तसाम् ॥ अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदेहवद्भिर
वाप्यते ॥ टी॰ ॥ निर्गुणब्रह्मकीउपासनामेंअत्यन्तक्ले
शहेइसलियेदेहाभिमानीपुरुषोंकोनिर्गुणब्रह्मअत्यन्तकठि
नतासेप्राप्तहोसकताहै ॥ ॥५॥

मू॰ ॥ येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्प
राः ॥ अनन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते ॥
टी॰ ॥ जोपुरुषसम्पूर्णकर्ममुझेअर्पणमेरेपरायणहोअन
न्यसमाधिरूपयोगकरकेचिन्तनकरतेहुएमेरीउपासनाकरतेहैं

मू॰ ॥ तेषामहंसमुद्धर्त्तामृत्युसंसारसागरात ॥
भवामिनचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम् ॥
टी॰ ॥ उन्होंमेंइसमृत्युयुक्तसंसारसमुद्रसेशीघ्रहीउद्धारक
रदेताहूं ॥ ॥७॥

मू॰ ॥ मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिंनिवेश
य ॥ निवशिष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वंनसं
शयः ॥ टी॰ ॥ इसलियेहेअर्जुनतूंअपनेमनऔरबुद्धि
कोमैंपरमेश्वरमेंस्थितकरनेतोशरीरत्यागकेपीछेतूंनिःसंदेह

अभेदरूपहोकर मुझेप्राप्त होवेगा ॥ ॥८॥ ॥

मू० ॥ अथचित्तं समाधातुंनशक्नोषिमयि
स्थिरम् ॥ अभ्यासयोगेन ततोमामिच्छाप्तुं
धनंजय ॥ टी० ॥ हेअर्जुनजोतूअपनेमनकोमेरेमेस्थि
तकरनेकोअसमर्थहोवेतोमेरीप्राप्तिकेलियेअभ्यासयोगकर

मू० ॥ अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमोभव
॥ मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि
॥टी०॥ औरजोअभ्यासयोगकरनेमेभीतूअसमर्थहोवेतो
मेरेप्राप्तहोनेकोभागवतकर्मकोकर ॥ ॥१०॥ ॥

मूल० ॥ अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुंमद्योगमा
श्रितः ॥ सर्बकर्मफलत्यागं ततःकुरुयता
त्मवान् ॥टी०॥ जोभागवतकर्मोंकेकरनेमेंभीतूअसमर्
थहोवेतोमुझमेंयुक्तऔरयताआत्मवान होसम्पूर्णकर्मोंकेफल
कोत्यागकर ॥ ॥११॥

मू० ॥ श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्या
नंविशिष्यते ॥ ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्या
गाच्छांतिरनंतरम् ॥टी०॥ अभ्याससेज्ञानज्ञा
नसेध्यानध्यानसेकर्मोंकेफलकात्यागश्रेष्ठहैजिसत्यागा

से मोक्षरूप शांति होती है ॥ ॥१२॥

मू० ॥ अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥ निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ टी० ॥ जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में अद्वेष्टा और सबका मित्र दयावान ममता और अहंकार से हीन सुख दुःख समभाव में और क्षमावान है ॥ ॥ ० ॥ ॥१३॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥ मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ टी० ॥ और सर्वदा समाहित चित्तवाला संतुष्ट इन्द्रीजित और दृढ निश्चयवाला होकर मन बुद्धि को मुझे अर्पण करता है वह भक्त मुझे प्रिय है ॥ ॥१४॥

मू० ॥ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥ हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ टी० ॥ जिस पुरुष से इस लोक में कोई भी दुःखी नहीं होता और वह भी पुरुष किसी से नहीं दुःखी होता और हर्ष अमर्ष भय उद्वेग से रहित है ऐसा जो भक्त पुरुष मुझे अत्यन्त प्यारा है

मू० ॥ अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः

॥ सर्वारंभा परित्यागी योमद्भक्तः समेप्रियः ॥ टी०
॥ जोमनुष्यमेरे सिवायअन्यअपेक्षासे रहित वसुद्ध वस्वधर्म
अनुष्ठानमेचतुर शास्त्रोक्त कर्म करनेमे व्यथा रहित वमेरेआराधन
केसीवाय सम्पूर्णआराधनमे उदासीनहैऐसा भक्तमुझेप्यारोहे ॥ १६ ॥

मू० ॥ यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्ष
ति ॥ शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः समे
प्रियः ॥ टी० ॥ जोपुरुष हर्ष द्वेषशोक इच्छा आदिकोंसेर
हित है और सुभअसुभकर्मोंकात्यागीहैऐसाभक्तिमानपुरुषमुझेप्यारोहे
॥ १७ ॥

मू० ॥ समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः
॥ शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥
टी० ॥ जोपुरुषशत्रुमित्रमानअपमानसर्दीगर्मीसुखदुःखइ
नसबोंमेसमानचित्तवाला औरसंगसेरहितहै ॥ ॥०॥ १८ ॥०॥

मु० ॥ तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टोयनके
नचित ॥ अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे
प्रियोनरः ॥ टी० ॥ औरजिसनिन्दास्तुतिबराबरहैवमु
निभाववाला औरसब तरहकेभोजन बस्त्रोंमें संतुष्ट घरसेरहित
औरस्थिरबुद्धिवालाहै ऐसा भक्तिमान पुरुषमुझेप्रियहै ॥ १९ ॥

मू॰॥ येतुधर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते॥
श्रद्दधानामत्परमाभक्तास्तेऽतीवमेप्रियाः॥०

टी॰॥ पूर्वोक्त धर्मअमृतरूपहैंजो मनुष्यश्रद्धासमेतइन्हेंधा
रणकरतेहुएमेरेपरायणहैं वेमुझेअत्यन्तहीप्यारेहैं॥ २०॥०

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मबि
द्यायांयोगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसम्बादेभ
क्तियोगो नाम द्वादशो॥ १२॥ ऽध्यायः॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥ श्रीरामचन्द्रायनमः॥



श्रीगणेशायनमः ॥ (अथ त्रयोदशो ऽध्यायः) ॥ अर्जुनउवाच ॥ मू० ॥ प्रकृतिंपुरुषंचैव क्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानंज्ञेयंचकेशव ॥ टी० ॥ हेकेशव प्रकृतिक्याहै पुरुषक्याहै क्षेत्रक्याहै क्षेत्रज्ञक्याहै ज्ञानक्याहै ज्ञेयक्याहै मैं इनछवोंकी तत्वजाननेकीइच्छाकरताहूं ॥१॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इदंशरीरंकौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥ एतद्योवेत्तितंप्राहुः क्षेत्रज्ञइतितद्विदः ॥ टी० ॥ हेअर्जुन यहशरीर क्षेत्रकहा जाताहै औरइसक्षेत्रकोजोपुरुषजानताहै उसक्षेत्रक्षेत्रज्ञकेजाननेवाले पुरुष क्षेत्रज्ञकहतेहैं ॥ ॥ ० ॥ ॥२॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धि सर्वक्षेत्रेषुभारत ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानंमतंमम ॥ टी० हेअर्जुन सम्पूर्णक्षेत्रोंमेंमैं अद्वितीयब्रह्मही क्षेत्रज्ञएकनामसेस्थितहूं औरक्षेत्रक्षेत्रज्ञदोनोंकाज्ञानहीमेराउत्तमज्ञानवस्वरूपहै ॥३॥

मू० ॥ तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्च यद्विकारियतश्चयत् ॥ सचयोयत्प्रभावश्च तत्समासेनमेशृणु ॥ ॥ टी० ॥ हेअर्जुन क्षेत्र केस्वभाव औरइच्छादिकवइन्द्रियोंकेविकार औरउससेजोकार्यउत्पन्नहोतेहैं उन्हेंसुन औरक्षेत्रज्ञकास्वभाव

वत्रभावऔर स्वरूपभी अवणकर ॥ ॥०॥॥४॥ ॥०॥॥

मू॰ ॥ ऋषिभिर्बहुधागीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥ ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥टी॰॥ जिसक्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकोवसिष्टादिकऋषियोंनऋगादिक वेदोंवयुक्तियोंवालोंऔरनिश्चलअर्थवाले ब्रह्मसूत्रपदोंनेबहुतनतरहसेबर्णनकियाहै ॥ ॥५॥॥

मू॰ ॥ महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेवच ॥ इन्द्रियाणिदशैकंच पंचचेंद्रियगोचराः ॥टी॰॥ येआकाशादिकपंचमहाभूतअहंकारबुद्धि
अव्यक्तदशइन्द्रियोंसमेतमनऔरउनकेबिषया

मू॰ ॥ इच्छाद्वेषः सुखंदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥ एतत्क्षेत्रंसमासेन सविकारमुदाहृतम् ॥टी॰॥ रागद्वेषसुखदुःख संघातचेतनाधीरजसमूरणविकारोंसमेतसंक्षेपसेहमनेक्षेत्रोंकोवर्णनकिया ॥७॥

मू॰ ॥ अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवम् ॥ आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥टी॰॥ अमानिपणां अदम्भिपणां अहिंसा क्षान्तिअकुटिलतासद्गुरुआचार्यकीउपासनाप

क्रिताासनमार्गमेप्रवृत्तिऔरमनकोसवत्रसेरोककरपरमेश्वर
मेलगाना ॥ ॥८॥

मू० ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकारएवच ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

टी० ॥ इन्द्रियोंकेविषयोंसेवैराग्यमेंमनअहंकारसेरहित
पराांजन्ममृत्युबुढ़ाईरोगकेदुःखऔरदोषोंकोदेखना ॥९॥

मू० ॥ असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादि
षु ॥ नित्यंच समचितत्व मिष्टानिष्टोपप
त्तिषु ॥ टी० ॥ पुत्रस्त्रीगृहादिकपदार्थोंमेंप्रीतिऔ
रअभिष्वङ्गसे रहितपराां औरइष्टअनिष्टमेंसर्वदास
मचितरहना ॥ ॥१०॥

मू० ॥ मयिचानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारि
णी ॥ विविक्तदेशसेवित्व मरतिर्जनसंसदि
॥ टी० ॥ मेरीअनन्यऔरव्यभिचारिणीभक्तिएकान्तदे
शकासेवनविषईमनुष्योंकीसंगतिकात्याग ॥ ॥११॥

मू० ॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थ
दर्शनम् ॥ एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानंय
दतोन्यथा ॥ टी० ॥ आत्मज्ञानमेंविश्वासयुक्तनि

त्यहीप्रीति औरतत्वज्ञानका सर्वदादर्शन येज्ञानकेबीस
साधनज्ञानरूपहीहैं इनकेविपरीत अज्ञानहैं इसलियेयेत्याज्यहैं ॥ १२ ॥
मू॰ ॥ ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृत
मश्नुते ॥ अनादिमत्परंब्रह्म नसत्तन्नासदु
च्यते ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनजिसजाननेयोग्यवस्तुकोजान
करमुमुक्षुजनअमृतरूपहोजातेहैं वहअनादि मत्परब्रह्म
हैजोसतऔरअसतनहींकहाजासक्ता ॥ ॥०॥१३॥०॥॥
मू॰ ॥ सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोक्षिशि
रोमुखम् ॥ सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमाव
त्यतिष्ठति ॥ टी॰ ॥ सम्पूर्णशरीरोंमेंहाथपैरआं
खेंसिरमुखकानआदिकसम्पूर्णउसीब्रह्मकेहैं जोसम्पू
र्णचेतनवर्गमेंव्याप्तहोकरस्थितहै ॥ ०॥१४॥०॥
मू॰ ॥ सर्वेंद्रियगुणाभासंसर्वेंद्रियविवर्जि
तम् ॥ असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृ
च ॥ टी॰ ॥ वहब्रह्मसम्पूर्णइन्द्रियोंसेरहितहै लेकिन
इन्द्रियोंकेव्यापारकरकेभाषमानहोताहै औरसम्बन्धोंरहि
तहैपरन्तुसम्पूर्णसम्बन्धोंकाधारणाकरनेवालाहै औरसत्वादि

कगुणोंसेरहितहैलेकिनउनगुणोंकाभोगनेवालाहै ॥ ॥ १५ ॥ ॥

मू० ॥ बहिरंतश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत्

॥टी०॥ वहीब्रह्मसम्पूर्णभूतोंकेबाहरभीतरव्याप्तहो

करस्थावरजंगमरूपहोरहाहैअत्यन्तसूक्ष्महोनेकेकारण

सबकेजाननेकेयोग्यनहींहैऔर ज्ञानियोंकोवहसमुणात्र

ह्मअत्यन्तनेरेहैलेकिनअज्ञानियोंकोअत्यन्तहीदूरहै।१६।

मू० ॥ अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थि

तम् ॥ भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णु

च ॥टी०॥ एकहीपर ब्रह्मसम्पूर्णप्राणियोंमेंस्थितहै

लेकिनअलगअलगहुएकीनरहजानपड़ताहैवहीपर

ब्रह्मसम्पूर्णभूतोंकोउत्पन्नधारणऔरसंहारकरनेवालाहै।१७

मू० ॥ ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमु

च्यते ॥ ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्य

धिष्ठितम् ॥टी०॥ ज्ञेयब्रह्मसूर्य्यादिकज्योति

योंकाभीप्रकाशकहैऔरसूक्ष्मकारणरूपमायासेन्या

राकहाजाताहैऔरज्ञानज्ञेयरूपहैवज्ञानकरकेप्राप्त

होताहै और सम्पूर्ण प्राणियोंके बुद्धिमेंस्थितहै ॥ १८ ॥

मू० ॥ इतिक्षेत्रं तथाज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥ मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ टी० ॥ हे अर्जुन पूर्वोक्तप्रकारकरके हमने क्षेत्रज्ञान और ज्ञेयको संक्षेपसे वर्णनकिया जिन्हें जानकर मेराभक्त मेरे भावको प्राप्त होनेके योग्य होताहै ॥ १९ ॥

मू० ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥ विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं और सम्पूर्ण विकार व गुण प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं ॥ २० ॥

मू० ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥ पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ टी० ॥ कार्य और कारण अपरा प्रकृतिसे उत्पन्न होने हैं लेकिन सुखदुःख पुरुष भोगताहै ॥ २१ ॥

मू० ॥ पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ॥ कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ टी० ॥ क्षेत्रज्ञ पुरुष मायारूप प्रकृतिमें स्थित होकर

उसीमायासेउत्पन्नसुखदुःखादिकगुणोंकोभोगताहैऔ
रमायाकेसाथहोनेकेकारणसेउससेऊंचनीचयोनियोंमेज
न्मलेनापडताहै ॥ ॥२२॥

मू० ॥ उपद्रष्टानुमंताचभर्त्ताभोक्तामहेश्व
रः ॥ परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरु
षःपरः ॥ टी० ॥ शरीरोंमेंवर्त्तमानहुवाभीक्षेत्रज्ञपु
रुषसवसेअलगहैइसलियेसाक्षीसलाहदेनेवालाभ
र्त्ताभोक्तामहेश्वरऔरपरमात्माइननामोंकरकेकहाजाताहै
॥ ॥२३॥ ॥

मू० ॥ यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह
॥ सर्वथावर्त्तमानोपिनसभूयोऽभिजायते
॥ टी० ॥ जोअधिकारीपुरुषपूर्वोक्तप्रकारसेक्षेत्रज्ञ
पुरुषकोअपनेविकारोंसमेतअविद्यारूपमायाको
जानताहैवहसवप्रकारसेवर्त्तमानहुवाभीफिरजन्मको
नहीप्राप्तहोता ॥ ॥२४॥ ॥

मू० ॥ ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मान
मात्मना ॥ अन्येसांख्येनयोगेनकर्मयो
गेनचापरे ॥ टी० ॥ कोईपुरुषबुद्धियोगकेद्वारा
ध्यानकरकेसाक्षात्कारकरतेहुएदिव्यचक्षुद्वाराप्रत्यक्ष

आत्माकोआपनेअंतःकरणमेंदेखतेहैं औरकोईसांख्य अर्थात्प्रकृतिपुरुषकाभेदबिचारणेद्वारा देखतेहैं औरकोई कर्मयोगकरकेदेखतेहैं ॥ ॥२५॥

मू॰ ॥ अन्येत्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ॥ तेऽपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ टी॰ ॥ अन्यअधिकारीमनुष्यपूर्वोक्त उपायकरकेआत्माकोनहीजानतेहुए केवलगुरुसेसुनकरइसमृत्युयुक्तसंसारको अवश्यत्यागदेतेहैं ॥ ॥२६॥

मू॰ ॥ यावत्संजायतेकिंचित्सत्वंस्थावरजंगमम ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ ॥ टी॰ ॥ हेभरतवंशमेंश्रेष्ठअर्जुनस्थावरजंगमरूपसम्पूर्णपदार्थक्षेत्रक्षेत्रज्ञदोनोकेसंयोगहीसेउत्पन्नहोतेहैं ॥२७॥

मू॰ ॥ समंसर्वेषुभूतेषुतिष्ठंतंपरमेश्वरम ॥ विनश्यत्स्वविनश्यंतंयः पश्यतिसपश्यति ॥ टी॰ ॥ जोपुरुषनाशवानसम्पूर्णप्राणियोंमेंसमानिर्विकाररूपसेस्थितविनाशसेरहितपरमें

श्वररूपन्आत्माकोदेखताहैवहीयथार्थदेखनेवालाहै ॥२८॥

मू० ॥ समंपश्यन्हिसर्वत्रसमवस्थितमीश्वरम् ॥ नहिनस्त्यात्मनाऽत्मानंततोयातिपरांगतिम् ॥ टी० ॥ जोपुरुषसम्पूर्णभूतोंमेसमवसमवस्थितईश्वररूपन्आत्माकोदेखताहैवहविद्वानपुरुषन्आत्माकरकेन्आत्माकीरक्षाकरतेहुएपरमगतिकोप्राप्तहोताहै ॥ ॥२९॥

त्ये

मू० ॥ प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥ यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ टीका ॥ जोपुरुषमायारूपप्रकृतिहीकोसम्पूर्णकामकरतेहुएन्औरन्आत्माकोन्अकर्तादेषताहैएवहीपुरुषजयार्थदेखनेवालाहै ॥ ।३०।

मू० ॥ यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥ ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ टी० ॥ जोपुरुषजिससमयसम्पूर्णभूतोंकेन्अलगन्अलगभावकोएकन्आत्मामेंस्थितदेषताहैवएकहीन्आत्मासेसम्पूर्णभूतोंकेविस्तारकोदेखताहैवहपुरुषउससमयब्रह्मरूपहीहै ॥ ॥३१॥००

मू॰ ॥ अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायम्
व्ययः ॥ शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न
लिप्यंते ॥ टी॰ ॥ अनादि निर्गुण और अव्यय होने
के कारण यह परमात्मा देव शरीर में स्थित हुवा भी न कोई कर्म
करता है और न लिपायमान होता है ॥ ॥ ० ॥ ३२ ॥ ० ॥
मू॰ ॥ यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलि
प्यंते ॥ सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलि
प्यते ॥ टी॰ ॥ जैसे असंग स्वभाव वाला आकाश सब में
व्यापक हुवा भी किसी में लिपायमान नहीं है तैसे ही असंग
स्वभाव वाला होने से यह आत्मा भी सम्पूर्ण शरीरों में स्थित हुवा
भी लिपायमान नहीं है ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥
मू॰ ॥ यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमि
मं रविः ॥ क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशय
ति भारत ॥ टी॰ ॥ जैसे एक ही सूर्य्य सम्पूर्ण लोकों
को प्रकाशित करता है तैसे एक ही क्षेत्रज्ञ भी सम्पूर्ण क्षेत्रों
को प्रकाश करता है ॥ ॥ ० ॥ ॥ ३४ ॥ ॥ ० ॥ ॥
मू॰ ॥ क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ।
॥ भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥

टी०। जोपुरुषक्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंकीबिलक्षणताको औरमायाकेअत्यन्ताभावकोज्ञानरूपीनेत्रोंसेदेषताहै वहकेवल्यमुक्तिकोप्राप्तिहोताहै ॥१०॥३५॥१॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीभगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मबिद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञ बिभागयोगोनामत्रयोदशो ॥१३॥ऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमस्तु श्रीरामचन्द्रायनमः श्रीनारायणायनमः



श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मू०
॥ परंभूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानांज्ञानमुत्तम
म् ॥ यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परांसिद्धिमितो
गताः ॥ टी० ॥ ज्ञानसाधनोंमेंअत्यन्तउत्तमज्ञानसाध
नोंकोहमतुमसेफिरभीकहतेहैंजिन्हेंअनुष्ठानकरकेसम्पू
र्णमुनिइसदेहबंधनसेछूटकरकैवल्यमुक्तिकोप्राप्तहोतेहैं ॥ १
मू० ॥ इदंज्ञानमुपाश्रित्य ममसाधर्म्यमाग
ताः ॥ सर्गेपिनोपजायंते प्रलयेनव्यथंति
च ॥ टी० ॥ जिनविद्वानविवेकीपुरुषोंनेइनज्ञानसाध
नोंकोधारणकियाहैवेअत्यन्तअभेदरूपसेंमेंअद्वितीयपरमे
श्वरकोप्राप्तहैइसलियेअबवेसृष्टिकेआदिमेंउत्पन्ननहींहो
ते औरनप्रलयकालमेंनष्टहोतेहैं ॥ ॥०॥ ॥ २ ॥ ॥०॥ ॥
मू० ॥ ममयोनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भंदधा
म्यहम् ॥ संभवः सर्वभूतानां ततोभवति
भारत ॥ टी० ॥ हेअर्जुन त्रिगुणात्मक (अपरा) माया
मेंपरमेश्वरकेगर्भधानकास्थानहैजिसमेंमैंचैतनअंशजी
वरूपगर्भकोधारणकरताहूँउसीसेसम्पूर्णभूतउत्पन्नहोतेहैं ३
मू० ॥ सर्वयोनिषुकौंतेय मूर्तयः संभवंतियाः

॥ तासां ब्रह्म महद्योनि रहं बीजप्रदः पिता ॥ टी० ॥ हे अर्जुन देवादिक सम्पूर्ण योनि योंमें जितने देह उत्पन्न होते हैं तिनसबोंकी पूर्वोक्त अपरा माया ही माता है और मैं परमेश्वर चेतनरूप बीजका देनेवाला पिता रूप ही हूं ॥ ४॥

मू० ॥ सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः ॥ निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ टी० ॥ हे महानु बाहुवाले अर्जुन मायासे उत्पन्न हुए सत्व रज तमयह तीनों गुण अव्यय जीव आत्माको इस देहमें बंधायमान करते हैं ॥ ॥ ५॥

मू० ॥ तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥ सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ टी० ॥ हे सम्पूर्ण पापोंसे रहित अर्जुन पूर्वोक्त तीनों गुणोंमे निर्मल प्रकाशक और दुःखोंसे रहित सतोगुण जीव आत्माको सुख और ज्ञानके संग करके बंधायमान करता है ॥ ॥ ० ॥ ६ ॥ ० ॥

मू० ॥ रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा संगसमुद्भवम् ॥ तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ टी० ॥ हे कौंतेय तृष्णा और प्रीतिका उत्पन्न करनेवाला रजोगुण इस देहाभिमानी जीवको कर्मके साथ बंधायमान करदेता है ॥ ७॥

मू॰ ॥ तमस्त्वज्ञानयंविद्धि मोहनं सर्बदेहिनाम ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तान्निबध्नानिभारत ॥ टी॰
हेअर्जुनअज्ञानसेउत्पन्नहुवातमोगुणसम्पूर्णजीवोंकोमोहयुक्तकरने
वालाइसजीवआत्माकोप्रमादआलस्यनिद्राकरकेबंधायमानकरताहै।

मू॰ ॥ सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥
ज्ञान माब्रत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ टी॰
इसपुरुषकोसतोगुणसुखमेंऔररजोगुणकर्ममेंतमोगुणज्ञान
कोनष्टकरकेप्रमादमेयुक्तकरदेताहै। ० ॥९॥ ० ॥९॥ ० ॥

मू॰ ॥ रजस्तमश्चाभिभूयसत्वं भवति भारत ॥ रजः
सत्वंतमश्चैवतमः सत्वंरजस्तथा ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन
रजोगुणतमोगुणकोदबाकर सतोगुण बढ़ताहैरजोगुणसतोगुणको
दबाकरतमोगुणबढ़ताहैऔरसतोगुणतमोगुणकोदबाकररजोगुणबढ़
ताहैतबस्वर्नचर्नहोयेअपनाअपनाकामकरतेहैं। ० ॥ ० ॥१०॥ ० ॥०

मू॰ ॥ सर्बद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ॥
ज्ञानंयदातदाबिद्याद्विबृद्धंसत्वमित्युत ॥
टी॰ ॥ जिससमयइसशरीरकी सम्पूर्णइन्द्रियोंकोबिषयसेबै
रागरहताहैअर्थात्इन्द्रियोंमेज्ञानरुपप्रकाशउत्पन्नहोताहैतिससम
॥ यसतोगुणकाप्रकाशरहताहै ॥११॥

मू० ॥ लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृ
हा ॥ रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरत
र्षभ ॥ टी० ॥ हे अर्जुन रजोगुणके प्रकाशमें लोभ कर्मोंमें
प्रवृत्ति अनेक प्रकारकी तृष्णा व विषय सुख भोगनेकी इच्छा
और बहुत तरहके बन्दोवस्तोंके बिचार उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥
मू० ॥ अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह
एव च ॥ तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरु
नन्दन ॥ टी० ॥ हे अर्जुन तमोगुणके प्रकाशमें अज्ञानता
आलस प्रमाद और मोहादिक तम पुंज उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥
मू० ॥ यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृ
त् ॥ तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्य
ते ॥ टी० ॥ सतोगुणके बर्तावमें यह देहाभिमानी जीव शरीर
त्यागनेसे देव उपासक पुरुषोंके दिव्य लोकोंको प्राप्त होता हुवा
आत्मज्ञान प्राप्त होनेके योग्य मनुष्य शरीरको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥
मू० ॥ रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जाय
ते ॥ तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जा
यते ॥ टी० ॥ रजोगुणके बर्तावमें यह देहाभिमानी जीव

शरीरत्यागनेसेक्षत्रियादिकयथायोग्यमनुष्यशरीरकोप्राप्त होताहै औरतमोगुणकीवर्तामें शरीरत्यागनेसेयहजीव पश्वादिकयोनियोंमेंउत्पन्नहोजाताहै ॥१५॥

मू॰॥ कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ॥ रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ टी॰॥ सतोगुणकाफलनिर्मलसुखहै रजोगुणकाफलदुःखहै तमोगुणकाफलअज्ञानहै १६

मू॰॥ सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥ प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ टी॰॥ सतोगुणसे ज्ञानउत्पन्नहोताहै रजोगुणसेलोभ औरतमोगुणसेप्रमादमोहअज्ञानादिउत्पन्नहोतेहैं ॥१७॥

मू॰॥ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ॥ जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ टी॰॥ सतोगुणीवृत्ति धारणकरनेवालेपुरुषऊपरकेदेवलोकोंकोप्राप्तहोतेहैं और रजोगुणीवृत्तिधारणकरनेवालेमनुष्यलोकमें औरतमोगुणी

त्तिधारराकरनेवाले मनुष्यसर्पादियोनियोंमेउत्पन्नहोतेहैं॥१८॥

मू० ॥ नान्यंगुणेभ्यः कर्त्तारं यदाद्रष्टानुपश्यति ॥ गुणेभ्यश्च परंवेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ टी० ॥ जिससमयमेंयहद्रष्टायथार्थदर्शी पुरुष सत्वादिकगुणोंकोहीकर्त्ता देखताहैऔरआत्माको तीनोंगुणोंसेअलगदेखताहैतिससमय ब्रह्मभावकोप्राप्त होताहै॥ ॥१९॥

मू० ॥ गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥ जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ टी० ॥ विद्वान पुरुषदेहकीउत्पत्तिकाबीजरूपसत्वादिकतीनोंगुणोंकोत्यागजन्ममृत्युजराऔरदुःखसेरहितहोमोक्षकोप्राप्तहोताहै॥ ॥२०॥

मू० ॥ अर्जुनउवाच ॥ कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवतिप्रभो ॥ किमाचारः कथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ टी० ॥ हेप्रभुसत्वादिकतीनोंगुणोंकेत्यागकरनेवालेमहावीरपुरुषकेलक्षणवआचारक्याहैंऔरकिसप्रकारसेप्रवृत्तिगुणों

को त्यागकरताहै॥ २१

मू॰॥ श्रीभगवानुवाच॥ प्रकाशंचप्रवृत्तिंच
मोहमेवचपांडव॥ नद्वेष्टि संप्रवृत्तानिकां
क्षति॥टी॰॥ हेअर्जुन प्राप्तहुएप्रकाशवप्रवृत्तिऔरमोह
मेंजोपुरुषकुछइच्छाोद्वेषनहीकरताउसेगुणातीतकहतेहैं॥२२॥

(१) मू॰॥ उदासीनवदासीनो गुणैर्योनविचा
ल्यते॥गुणावर्तन्त इत्येवयोऽवतिष्ठतिनें
गते॥टी॰॥ जोपुरुषउदासीनकीतरहस्थितहोताहैऔर
सत्वादिकगुणोंसेचलायमाननहीहोता वल्कियहदेषताहैकी
विगुणहीअपनेव्यापारमेंप्रवृत्तिहैंउसेगुणातीतकहतेहैं॥ २३

(3) मू॰॥ मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्योमित्रारिप
क्षयो॥ सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः सउ
च्यते॥टी॰॥ जोपुरुषमानअपमानमित्रशत्रुकोबराबर
समझताहैऔरसम्पूर्णआरम्भोंकात्यागीहै उसेगुणातीतक
हतेहैं॥ २५

(२) मू॰॥ समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठा
श्मकांचनः॥ तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्य

निंदात्म संस्तुतिः ॥टी०॥ जिसपुरुषकोसुखदुः
खादिद्वन्द्वबराबरहैं औरअपनेवास्तवस्वरूपमें स्थितहै व
मीट्टीपत्थरसोनाकोबराबरसमझताहै औरप्रियअप्रियर
वनिन्दास्तुतिबराबरहैं ऐसेधीरबीरपुरुषकोगुणातीतकहतेहैं ॥२५॥

(४) मू०॥ मांचयोऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन से
वेत ॥ सगुणान्समतीत्यैतान ब्रह्मभूयाय
कल्पते ॥टी०॥ जोपुरुषमुझेअनन्यभक्तियोगकर
केचिंतनकरताहै वहसत्वादिकगुणोंकोत्यागकरके ब्रह्म
भावकोप्राप्तहोताहै ॥ ॥२६॥

मू०॥ ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच
॥ शाश्वतस्यच धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्यच ॥
टी०॥ क्योंकिमरणधर्मसेरहितअबिनाशीब्रह्मअर्थात्मु
क्तजीवऔरसनातनधर्मभक्तियोगवऐक्यसुखस्वरूपकीप्राप्तिइ
नसभोंकाआधारमें वासुदेवहीहूं ॥ ॥०॥ ॥२७॥ ॥०॥ ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेगुणत्रयविभागयोगो
नाम चतुर्दशो ॥१४॥ ऽध्यायः श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मू० ॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थंप्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसियस्यपर्णानियस्तंवेदसवेदवित् ॥
टी० ॥ यहसंसाररूपीवृक्षऊपरमूलऔरनीचेसाखावालाहै जिसके
कर्मकांडरूपवेदपत्तेहैं ऐसेसंसाररूपीवृक्षको जोपुरुषजानताहै
वहीयथार्थवेदकाजाननेवालाहै ॥ ॥ १ ॥
मू० ॥ अधश्चोर्ध्वंप्रसितास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥ अधश्चमूला
न्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके
॥ टी० ॥ पूर्वोक्तसंसाररूपीवृक्षकीसाखायेंऊपरनीचेफै
लीहुईऔरसन्वादिकगुणरूपीरस्सियोंसेबंधीहुईहैं तिससं
साररूक्षकीवासनारूपमूलमनुष्यदेहमेंपुण्यपापरूपकर्मों
केउत्पन्नकरनेवालीहैं ॥ ॥ २ ॥
मू० ॥ नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनांतोन
चादिर्नचसंप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनंसुवि
रूढमूलमसंगशस्त्रेणदृढेनछित्वा ॥ टी० ॥
इससंसाररूपीवृक्षमेंरहनेवालेप्राणीउसकेरूपऔरआदिअंत

मद्धयको नहीजानते ऐसेदृढमूलवालेव्रक्षकोअत्यन्तदृढअसंग

औरबैराग्यरूप हथियारसेकाटना चाहिये ॥ ॥ ० ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गताननिवर्तंति भूयः ॥ तमेवचाद्यं पुरुषंप्रपद्ये यतः प्रव्रतिः प्रस्रता पुराणी ॥ टी० ॥ तिसकेपीछेब्रह्म

रूपपदहीजाननेयोग्यहैजिसपदमेस्थितहुवाविद्वानपुरुषफिर

जन्मकोनहीप्राप्तहोताताद्नंतरयहनिश्चयरखनाचाहिये किमैं

उसआदिपुरुषकेशरणाकोप्राप्तहुवाहूँजिससेइससंसाररूपीव्रक्ष

कीप्रव्रतियांअनादिकालसेफैलीहुईहैं ॥ ॥ ० ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या बिनिव्रत्तकामाः ॥ द्वन्दैर्बिमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमब्ययंतत् ॥ टी० ॥

जोपुरुषमानमोहसंगदोषकामनासुख दुःखवसीतोष्णादिकोंसेर

हितहैऔरब्रह्मविद्याकेबिचारनेमेंतत्परहैवहविद्वानपुरुषअव्य

यदकोप्राप्तहोताहै ॥ ॥ ० ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ०० ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ नतद्भासयते सूर्यो नशशांको नपावकः ॥ यद्गत्वा ननिवर्तंते तद्धाम परमंमम ॥ टी० ॥ ० ॥

मेरेअत्यन्तश्रेष्ठ स्वयंप्रकाशआत्मस्वरूपविष्णुपरमपदकोसू

येचन्द्रमा औरअग्निप्रकाशनहींकरसक्ते तत्त्वबेत्ता पुरुषउसेही
प्राप्तहोकरजन्ममरणसेरहितहोजातेहैं॥ ॥०॥ ॥६॥ ॥०॥ ॥

मू॰ ॥ ममैवांसो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानिकर्षति

टी॰ ॥ इससंसारमेंमेंपरमात्माकाअंशहीजीवरूपहेजिसमें
पांचज्ञानइन्द्रियोंसमेतछठवांमनहैपूर्वोक्तांशअज्ञानसेसं
कुचितहोमायाकेबिकारोंमेंप्रीतिमानहोनेकेकारण जीवलो
कहीमेंरहकरश्रोत्रादिकइन्द्रियोंकोखींचताफिरताहै ॥ ॥७॥

मू॰ ॥ शरीरं यदवाप्नोतियच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः
॥ गृहीत्वैतानिसंयातिबायुर्गंधानिवाशयात्

॥ टी॰ ॥ जैसेबायुसुगन्धकोखैंचलेजातीहैऐसेहीयह
जीवात्माशरीरकेत्यागसमयइन्द्रियोंकोसूक्ष्मरूपसेखींचे
लियेजाताहैऔरउन्हींसूक्ष्मरूपइन्द्रियोंसमेतनवीनशरीरमेंप्र
वेशहोताहै ॥ ॥०॥ ८ ॥ ०॥ ८॥ ॥ ०॥ ॥ ८॥ ॥ ०॥ ॥

मू॰ ॥ श्रोत्रंचक्षुः स्पर्शनंच रसनं घ्राणमेवच ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं बिषयानुपसेवते ॥ टी॰
यहजीवात्माकानआंखनाकत्वचाजीभऔरमनकेद्वाराशब्दा
दिकबिषयोंकोभोगताहै ॥ ॥९॥

मू० ॥ उत्क्रामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वि
तम् ॥ बिमूढानानुपश्यंतिपश्यंतिज्ञानचक्षु
षः ॥ टी० ॥ इसजीवात्माकोशरीरत्यागतेहुएऔरबिषयों
कोभोगतेहुएज्ञानरूपनेत्रवालेपुरुषदेखतेहैंलेकिनअज्ञानी
मूर्खकिसीकालमेंभीनहींदेखते ॥ ॥ ० ॥ ॥ १० ॥ ॥ ० ॥ ॥
मू० ॥ यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थि
तम् ॥ यतंतोप्यकृतात्मानोनैनंपश्यन्त्यचे
तसः ॥ टी० ॥ योगीपुरुषपरयत्नकरतेहुएअपनीबुद्धिमें
स्थितइसजीवात्माकोदेखतेहैंलेकिनबिषयासक्तअशुद्धअंतः
करनवालेअबिबेकीपुरुषप्रयत्नकरतेहुएभीउसेनहींदेखसक्ते ॥ ११
मू० ॥ यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेऽखि
लम् ॥ यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजोबिद्धिमा
मकम् ॥ टी० ॥ सम्पूर्णजगतकोप्रकाशदेनेवालातेजजो
सूर्यचन्द्रमांऔरअग्निमेंभीहैमेरास्वरूपहीहै ॥ ॥ १२ ॥ ॥
मू० ॥ गामाबिश्यचभूतानिधारयाम्यहमोज
सा ॥ पुष्णामिचौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वा
रसात्मकः ॥ टी० ॥ इसपृथ्वीकोसम्पूर्णभूतोंसमेतमैं

परमेश्वरही अपनी शक्तिसे दृढ पकड़े हुए घुमाया करताहूं और
सम्पूर्ण औषधियोंको सबरसस्वभाववाला चन्द्रमारूपहोकर मैं
हीपुष्टकरताहूं ॥ ० ॥ १३ ॥

मू॰ ॥ अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देह माश्रि
तः ॥ प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विध
म् ॥ टी॰ ॥ मैं परमेश्वरही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें दे
हके आश्रयसे जठराग्निरूपहोकर प्राणअपानवायुके द्वारा
चारोंप्रकारके अन्नको पचाया करताहूं ॥ ० ॥ १४ ॥ ० ॥

मू॰ ॥ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृ
तिर्ज्ञानि मपोहनंच ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ टी॰ ॥ सम्पूर्ण
प्राणियोंके हृदयमें जीवात्माहोकर मैं परमेश्वरही प्रवेशहूं इस
लियेसबको स्मृति और ज्ञान वइनदोनोंका अभाव हमीसे हो
ताहै और वेदोंकरके मैंहीजाननेयोग्य वेदान्तके अर्थकी सम्प्र
दायका चलानेवाला और वेदवेत्ताहूं ॥ ० ॥ १५ ॥ ० ॥

मू॰ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवच
॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्य
ते ॥ टी॰ ॥ इससंसारमें क्षर व अक्षर दोही प्रकारके पुरुषहैं

कारणरूपमायाअक्षरऔरकार्यरूपशरीरक्षरकहलाताहै ॥ १६

मू० ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः
॥ योलोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययईश्वरः
॥ टी० ॥ औरअत्यन्तश्रेष्ठचेतनपुरुषजोतीनोलोकोंको
अपनेआश्रयकियेहुएव्याप्तहैऔरअव्ययईश्वरपरमात्मा
नामोंकरकेकहाजाताहैवहक्षरअक्षरदोनोंसेअलगहै ॥ १७ ॥

मू० ॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपिचो
त्तमः ॥ अतोऽस्मिलोकेवेदेचप्रथितः पुरु
षोत्तमः ॥ टी० ॥ मैंपरमेश्वरक्षरकोत्यागेदेताहूँऔर
अक्षरसेभीअत्यन्तबिलक्षणहूँइसलियेलोकऔरवेदोंमें
उत्तमपुरुषकहलाताहूँ ॥ ॥ ० ॥ ० ॥ १८ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ योमामेवमसंमूढोजानातिपुरुषोत्तम
म् ॥ ससर्वविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥
टी० ॥ जोसम्यकज्ञानीपुरुषमेरेइसपुरुषोत्तमरूपकोजानता
हैवहसबप्रकारसेमुझेभजताहुवासर्वज्ञहोजाताहै ॥ ० ॥ १९ ॥ ॥

मू० ॥ इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयाऽन
घ ॥ एतद्बुध्वाबुद्धिमानस्यात्कृतकृत्य
श्चभारत ॥ टी० ॥ हेसम्पूर्णपापोंसेरहितअर्जुनमैंनेतुमसे

इसपूर्वोक्त प्रकारकरके अत्यन्त छिपे हुए सम्पूर्ण शास्त्ररूप इस पंद्रहवें अध्यायको वर्णन किया जिसे जानकर बुद्धिमान पुरुष आत्मज्ञानवाला होय कृतार्थ होजाता है ॥ ॥ ० ॥ ॥ २० ॥ ॥ ० ॥ ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशो ॥ १५ ॥ ऽध्यायः ॥

श्रीकृष्णार्पनमस्तु ॥ श्रीरामचन्द्रायनमः ॥



श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मू० ॥

अभयंसत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः

॥ दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्तपआर्जव

म् ॥ टी० ॥ निर्भयअंतःकरणकीशुद्धिज्ञानयोगदोनोंमे

स्थितदानदमयज्ञस्वाध्यायतपऔरसीधापनयहसम्पूर्णदेवी

सम्पद्रूपहैं ॥०  ॥ ॥१॥ ॥

मू० ॥ अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशांतिर

पैशुनम् ॥ दयाभूतेष्वलोलुत्वंमार्दवंह्रीरचा

पलम् ॥ टी० ॥ अहिंसासत्यअक्रोधसन्याससांति

चुगलीनकरनासम्पूर्णप्राणियोंमें दयानिर्लोभताअक्रूरता

कुकर्मकरनेमेंलोकलज्जाव्यर्थकामनकरनायहसम्पूर्णभीदेवी

सम्पद्रूपहैं ॥  ॥२॥

मू० ॥ तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहोनातिमा

निता ॥ भवंतिसंपदंदैवीमभिजातस्यभा

रत ॥ टी० ॥ हेअर्जुनतेजक्षमाधीरजपवीत्रताअद्रोहमान(

कीइच्छासेरहितपनायहसम्पूर्णत्रिगुणासतोगुणीवासनाको(

सम्पादनकरकेउत्पन्नहुएपुरुषोंमेहोतेहैं॥ ॥०॥ ॥३॥ ॥०॥ ॥

मू०॥ दंभोदर्पोऽतिमानश्च क्रोधःपारु
ष्यमेवच ॥ अज्ञानंचाभिजातस्य पार्थ
सम्पद मासुरीम ॥टी०॥ हेअर्जुनदंभश्रेष्ठपुरुषों
केअपमानकरनेकेलियेगर्व विशेषअतिमानक्रोधकड़ीबातें
करनेकास्वभावअज्ञान यहसम्पूर्णरजोगुणऔरतमोगुणमें
अशुभवासनाओंकोसम्पादनकरकेउत्पन्नहुएपुरुषोंमेहोतेहैं॥४

मू०॥ दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबंधायासुरीम
ता ॥ माशुचःसंपदंदैवीमभिजातोसिपां
डव ॥टी०॥ हेअर्जुन दैवीसम्पतकोधारणसेमुक्तिप्रा
प्तिहोतीहै और असुरीसम्पतकीधारणसेबन्धनहोताहै॥५

मू०॥ द्वौभूतसर्गौलोकेऽस्मिन्दैवआसुर
एवच ॥ दैवोविस्तरशःप्रोक्तआसुरंपार्थ
मेश्रृणु ॥टी०॥ हेअर्जुनइसलोकमेदोप्रकारकेप्राणि
होतेहैंएकतोदैवसर्ग दूसरेअसुरसर्गउनमेंदैवी सम्पदवालों
कोहमनेतुमसेविस्तारसमेतवर्णन कियाअबअसुरीसम्पदवा
लोंकोसुनिये॥० ॥६॥

मू०॥ प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंच जनान विदुरासुराः

॥ न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥

टी०॥ असुरस्वभाववाले मनुष्योंमें न मन धर्मका कुछ भी विचार नहीं होता इसलिये उनमें पवित्रता सत्य और आचार भी नहीं होता ॥ ॥७॥

मू०॥ असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ॥ अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ टी०॥ असुरपुरुष इस जगतको असत्य आधारसे रहित और अनीश्वर जानते हैं इसलिये उसे परस्परसम्भूत कामहेतुक कहते हैं सिवाय इसके दूसरा कोई कारण नहीं मानते ॥ ॥८॥

मू०॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥ प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ टी०॥ पूर्वोक्त दृष्टिके आश्रय रहनेवाले नष्टात्मा अल्पबुद्धि दुराचारी पुरुष संसारके नष्ट करनेके लिये ही उत्पन्न होते हैं ॥ ॥९॥

मू०॥ काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥ मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशु

॥८८॥ भ-गी- अः १६ विव्रताः ॥ टी० ॥ दुष्पूर कामके आधीनरहेनवाले दंभमान और मदयुक्त दुराचारी होते हैं वे असुरपुरुष अबिवेकसे झूठे नि श्चयोंको धारणाकरनेहुए वेदके बिरुद्धही आचारकरते हैं ॥१०॥

मू० ॥ चिंतामपरिमेयांच प्रलयांतामुपा श्रिताः ॥ कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ टी० ॥ पूर्वोक्तअसुरशब्दादिकबिषयों केभोगकोही परमपुरुषार्थ समझते हैं इसलिये मरनेतकमहा चिंतामें डूबेरहते हैं ॥ ॥११॥

मू० ॥ आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोध परायणाः ॥ ईहंते कामभोगार्थ मन्यायेना र्थसंचयान् ॥ टी० ॥ पूर्वोक्तअसुर आशारूपरस्सि योंसेबंधेहुए औरकामक्रोधकेआधीनहो अन्यायकरिके धनादिकपदार्थोंको इकट्ठाकरनेकेलिये उपाय करते हैं ॥१२॥

मू० ॥ इदमद्य मयालब्धमिमं प्राप्स्ये म नोरथम् ॥ इदमस्तीदमपिमेभविष्यति पुनर्धनम ॥ टी० ॥ पूर्वोक्तअसुर ऐसे बिचारोंमेडूबे रहते हैं कियहधन भूतकालसे हममें प्राप्त है वह इससे प्राप्त करते हैं

हैं और इसधनवमनोरथकोभिविष्यतकालमेप्राप्तहोवेंगे॥ १३॥

मू० ॥ असौमया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥ ईश्वरोऽहमहंभोगी सिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ टी० ॥ हमनेइसशत्रुकोमाराऔरइसेमोरेंगेहम ईश्वरभोगीसिद्धबलवान औरसुखीहैं ॥ ० ॥ १४ ॥ ० ॥

मू० ॥ आढ्योऽभिजनवानस्मिकोन्योऽस्तिसदृशोमया ॥ यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः ॥ टी० ॥ हमबडेधनवानवकुलवानहैंहमारेबराबरदूसराकोईनहींहैहमयज्ञऔरदानकरकेबडीबडाईपावेंगेऐसेहीअज्ञानसेउत्पन्नहुए विचारोंमेमोहितरहतेहैं ॥ ० ॥ १५ ॥ ० ॥ १५ ॥ ० ॥

मू० ॥ अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः ॥ प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥ टी० ॥ अनेकदुर्वासनाओंकरकेचित्तभ्रांतवममतारूपीरस्सीसेबंधेहुए औरविषयसुखोंकोभोगनेमेंअत्यन्तप्रीतिमानऐसेपुरुषअशुद्धनरकोंमेभेजेजातेहैं ॥ १६ ॥

मू० ॥ आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥ यजंते नाम यज्ञैस्ते दंभेना विधिपूर्वकम् ॥ टी० ॥ असुरपुरुष अपने आपही पूज्य नम्रतासे रहित धनमानमद और दम्भसमेत शास्त्रविरुद्ध नामकेलिये यज्ञियां करतेहैं ॥ ॥ ० ॥ ॥ १७ ॥ ॥ ० ॥ ॥ १७ ॥

मू० ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥ मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥ टी० ॥ असुरपुरुष अहंकार बल दर्प काम क्रोध केधारणकरने वाले और असूयादोषवाले होतेहैं इसलिये वे अपने अथवा पराये शरीरमें स्थित मैं परमेश्वर का अनादर करतेहैं

मू० ॥ तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ॥ क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ टी० ॥ पूर्वोक्त दुष्टस्वभाववाले अधम मनुष्योंको मैं अत्यन्त दुष्ट सर्पादिकयोनियोंमे फेकता रहताहूं ॥ ॥ ० ॥ ॥ ० ॥ १९ ॥ ० ॥ ॥ ० ॥ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ०

मू० ॥ आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि (

जन्मनि ॥ मांप्राप्यैव कौंतेय ततोयांत्यध

मांगतिम् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन जो पुरुष आसुरीयोनियों

को प्राप्त होजाते हैं वे जन्मांत्रों मे नीचेही गिरते चले जाते है ॥ ॥ २० ॥

मू० ॥ त्रिबिधंनरकस्येदं द्वारंनाशनमात्मनः

॥ कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्य

जेत् ॥ टी० ॥ कामक्रोध और लोभ येनरक के बडे भारी दर्वा

ज़े लोगों को अधमयोनियों में प्राप्त करदेते हैं इसलिये इन्हे

त्यागना चाहिये ॥ ॥ ० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ ० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू० ॥ एतैर्बिमुक्तः कौंतेयतमोद्वारैस्त्रिभि

र्नरः ॥ आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततोयातिप

रांगतिम् ॥ टी० ॥ हे अर्जुन पूर्बोक्त नरक के तीनों दरवा

जों को त्याग देने वाले पुरुष सद्गुरु उपदेश द्वारा अपने कल्यान

को साधन करते हुए परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ० ॥ २२ ॥ ० ॥

मू० ॥ यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य बर्त्तते कामका

रतः ॥ नससिद्धिमवाप्नोति नसुखंनपरांग

तिम् ॥ टी० ॥ जो पुरुष सत्शास्त्र के अनुकूल नही चलता

उसकाअन्तःकरणभीशुद्धनहींहोताइसलियेउसेलो
कपरलोकमेंकहींभीसुखनहींहोता ॥ ॥ ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू॰ ॥ तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंते कार्याकार्य
व्यवस्थितौ ॥ ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं क
र्मकर्तुमिहार्हसि ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनकार्यओर
अकार्यमेंशास्त्रहीप्रमाणहै इसलियेइसकर्मकेअधिकारभू
मिमेंशास्त्रानुकूलकर्मजानकरतुझेयुद्धकरनाउचितहै ॥ २४

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म बि
द्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्बादे
देवासुरसम्पद्विभागयोगोनाम षोड्सो १६
॥ ऽध्यायः ॥ श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तुः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ अर्जुनउवाच ॥ मू० ॥

येशास्त्रविधिमुत्सृज्ययजंतेश्रद्धयाऽन्वि

ताः ॥ तेषांनिष्ठातुकाकृष्णसत्वमाहोर

जस्तमः ॥ टी० ॥ हेकृष्णजोपुरुषशास्त्रविधिकोत्याग

श्रद्धासमेतंदेवपूजनकर्मकोकरतेहैंवेपुरुषसात्विकीराजसी

तामसीश्रद्धाओंमेंसेकिसश्रद्धावालेहैं ॥॥०॥॥१॥॥०॥॥

मू० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिविधाभवतिश्र

द्धादेहिनांसास्वभावजा ॥ सात्वीकीराज

सीचैवतामसीचेतितांशृणु ॥ टी० ॥ हेअ

र्जुनदेहाभिमानीपुरुषअपनेपुर्विलेस्वभावकेअनुसारको

ईसात्विकीकोईराजसीऔरकोईतामसीश्रद्धावालेहोतेहैंउन

केभेदसुनिये ॥॥०॥॥२॥॥०॥०॥०॥२॥॥॥०॥॥॥०

मू० ॥ सत्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभार

त ॥ श्रद्धामयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःस

एवसः ॥ टी० ॥ हेअर्जुनसम्पूर्णप्राणियोंकीअपने

अन्तःकरणकेअनुसारहीश्रद्धाहोतीहैजोपुरुषजिसश्रद्धावा

लाहो तोहै वह उसके सदृश ही होता है इति ॥ ॥ ० ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ॥

मू० ॥ यजंते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राज(

सा: ॥ प्रेतान्भूत गणांश्चान्ये यजंते तामसा

जना: ॥ टी० ॥ देवतों के पूजक सात्विकी श्रद्धावाले यक्षरा

क्षसों के पूजक राजसी श्रद्धावाले और प्रेतों के पूजनेवाले तामसी

श्रद्धावाले कहलाते हैं ॥ ॥ ४ ॥

मू० ॥ अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो ज

ना: ॥ दंभाहंकार संयुक्ता: काम राग बलान्वि

ता: ॥ टी० ॥ जो पुरुष शास्त्र के बिरुद्ध और दंभ अहंकार व

कामरागबल संयुक्त ॥ ॥ ५ ॥

मू० ॥ कर्षयंत: शरीरस्थं भूतग्राममचेतस: ॥

मां चैवांत: शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चया(

न् ॥ टी० ॥ शरीर में स्थित भूतों को और अन्तर स्थित मैं परमे(

श्वर को दुर्बल करते हैं वे अविवेकी पुरुष निःसंदेह असुर है ॥ ६ ॥ ०

मू० ॥ आहारस्त्वपि सर्बस्य त्रिबिधो भवति प्रि

य: ॥ यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेद मिमं शृ(

गुण ॥टी०॥ सात्विकादिकभेदसेसम्पूर्णप्राणियोंकाप्याराभोजनयज्ञतपऔरदानयहभीतीनप्रकारकेहोतेहैंउन्हेसुनिये ॥७॥

मू० ॥ आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥ रस्याःस्निग्धाःस्थिराहृद्याआहाराःसात्विकप्रियाः ॥टी०॥ अवस्थाउत्साहबलआरोग्यतासुखऔरप्रीतिइनकेबढानेवालारसयुक्तघृतादियुक्तस्थिरदेखनेमेंभीअच्छाऐसेभोजनकोसात्विककहतेहैंवहसात्विकपुरुषोंकोप्यारालगताहै॥ ॥८॥

मू० ॥ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥ आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥टी०॥ अत्यन्तकडूखट्टालवणगर्मतीक्ष्णरुखादाहककरनेहारायहराजसीभोजनदुःखशोकऔररोगकोउत्पन्नकरताहैऔरराजसपुरुषोंकोप्यारालगताहै॥ ॥ ॥टी॥ ॥

मू० ॥ यातयामंगतरसंपूतिपर्युषितंचयत् ॥ उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियम् ॥टी०॥ पहरभरकाबनायागतरसदुर्गंधयुक्तकेवलअग्निकापकायाजूठावमांसयहतामसीभोजनतामसपुरुषोंकोप्यारालगताहै॥ १०

मू॰ ॥ अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो बिधिदृष्टोय(
इज्यते ॥ यष्टब्यमेवेति मनःसमाधायससा
त्विकः ॥ टी॰ ॥ सतशास्त्रकेअनुसारफलकीइच्छासेरहि
तमनमेंनिश्चयकरकेजोयज्ञियोंकीजातीहैंवेसात्विककहलातीहैं ॥ ११ ॥

मू॰ ॥ अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपिचैवय
त् ॥ इज्यते भरतश्रेष्ठ तंयज्ञं बिधिराजसम्
॥ टी॰ ॥ हेभरतवंशमेंश्रेष्ठअर्जुन स्वर्गादिकफलोंकीइच्छासे
अथवा दंभकेलियेजोयज्ञियांकीजातीहैंवेराजसी कहलातीहैं ॥ १२ ॥

मू॰ ॥ बिधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षि
णाम् ॥ श्रद्धाबिरहितंयज्ञं तामसं परिचक्ष
ते ॥ टी॰ ॥ जोयज्ञियांशास्त्रबिधिअन्नदानमंत्रदक्षिणाऔर
श्रद्धासेरहित कीजातीहैंवेतामसी कहलातीहैं ॥ ॥ ० ॥ ॥ १३ ॥ ॥ ० ॥ ॥

मू॰ ॥ देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्
॥ ब्रह्मचर्यमहिंसाच शारीरंतप उच्यते ॥
॥ टी॰ ॥ देवद्विजगुरुऔरतत्वदर्शीआचार्य्यइनसबोंकापूज
नशरीरकीशुद्धिशास्त्रविहितकर्ममेंप्रवृत्तिब्रह्मचर्यऔरअहिं
सायहशरीरतपकहलाताहै ॥ ॥ ० ॥ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ० ॥ ॥ ॥

मू० ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यंप्रियहितंचयत
॥ स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते ॥
टी० ॥ विषयोंकीचिन्ताकृतव्याकुलतासेरहितमननशील
मनअक्रूरतानमुनिभावमनकारोकनाअन्तःकरणकीशुद्ध
ताइसेमानसतपकहतेहैं इति ॥ (यहअर्थसोलहवांश्लोकका
हैगलतीसेपंद्रहवांश्लोककेटीकामेलिखागया) ॥ १५ ॥ ॥ ॥

मू० ॥ मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः
॥ भावसंशुद्धिरित्येततपोमानसमुच्यते ॥ टी०
॥ (यहअर्थपंद्रहवांश्लोककाहै) ॥ दुःखोंकोनप्राप्तकरनेवाला
वसत्यवप्याराऐसावाक्यऔरवेदोंवसतशास्त्रोंकाअध्ययन
इसेवाक्यतपकहतेहैं ॥ ॥ १६ ॥

मू० ॥ श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्रिविधंनरैः ॥ अ
फलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्विकंपरिचक्षते ॥ टी०
॥ जोपुरुषएकाग्रचित्तहोफलकीइच्छासेरहितअत्यन्तश्रद्धास
मेनतीनोंप्रकारकेतपोंकोकरतेहैंउसेसात्विकतपकहतेहै ॥ १७ ॥

मू० ॥ सत्कारमानपूजार्थंतपोदंभेनचैवयत्त ॥

क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥टी॰
जोतपसत्कारमानपूजाकेलियेपाखंडसेकियाजाताहैवहराज
सतपकेवलइसीलोकमेंकिसीकिसीकोफलदेनेमेंसमर्थहै ॥१८॥

मू॰॥ मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥टी॰
॥ जोतपकुवासनाऔरइन्द्रियादिकोंकीपीडायुक्तकिसीकेअ
नर्थकेलियेकियाजाताहैउसेतामसतपकहतेहैं॥॥॥ ॥१९॥॥॥

मू॰॥ दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे
॥ देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥
॥टी॰॥ यहदानअवश्यकरनायहैऐसीनिश्चयसेमनउत्तमदे
शमेंउत्तमकालमेंअनुपकारीउत्तमपात्रकोजोदानदियाजाताहै
उसेसात्त्विककहतेहैं॥॰ ॥२०॥

मू॰॥ यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः॥
॥दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥
टी॰॥ जोदानस्वर्गादिकफलकीइच्छासेऔरपश्चातापसेमन
प्रत्युपकारकपुरुषोंकोदियाजाताहैउसेराजसकहतेहैं॥॥२१॥॥

मू॰ ॥ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते

॥ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ ...

॥ अनकृत मवज्ञातं तत्तामससमुदाहृतम ॥ टी॰

जोदान अपात्रोंको और देशकालमें सत्कारसे रहित अवज्ञासमे

तदिये जाते हैं उसे तामस कहते हैं ॥ २२ ॥ ॥

मू॰ ॥ ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिवि

धिः स्मृतः ॥ ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च

विहिताः पुरा ॥ टी॰ ॥ ब्रह्माने सृष्टिके आदिकालमें ओं

तत्सत् इस ब्रह्मवाचक शब्दको उच्चारण करके ब्राह्मणादिक

कर्ता और कारणरूप वेद व कर्मरूप यज्ञोंको उत्पन्न किया है ॥ २३ ॥

मू॰ ॥ तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रि

याः ॥ प्रवर्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिना

म ॥ टी॰ ॥ इसलिये वेदवेत्ता पुरुष शास्त्रविधिके अनुसार

ओं इस शब्दको उच्चारण करके यज्ञदानतपरूप क्रियाओंको नि

रन्तर करते हैं ॥ ॥ २४ ॥

मू॰ ॥ तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रि

याः ॥ दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकां

क्षिभिः ॥ टी॰ ॥ मोक्षके इच्छावान पुरुष फलकी इच्छासे

रहित तत् इस शब्दको उच्चारण करके अनेक प्रकारके यज्ञतपर

ओरदानरूपक्रियाओंकोकरतेहैं ॥२५॥ ॥

मू॰ ॥ सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥ प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ टी॰ ॥ श्रेष्ठपनेमें साधुभावमें और मांङ्गलिक कर्मोंमें सत् इस शब्दको उच्चारण करते हैं ॥ ॥०॥ ॥२६॥ ॥०॥ ॥

मू॰ ॥ यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥ कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ टी॰ ॥ यज्ञतप और दानमें स्थितपदको भी सत् कीतरह उच्चारण करतेहैं ब्रह्मज्ञानके अनुकूल कर्मोमें सत्को उच्चारण करतेहैं ॥ ॥२७॥

मू॰ ॥ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन अश्रद्धासे जो हवन दान तप या कोई कर्म किये जाते हैं वे असत कहलाते हैं इसलिये इसलोक और परलोकमें उनका कुछ भी फल नहीं होता ॥ ॥२८॥



हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मवि
द्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्बादे
श्रद्धात्रयविभाग योगो नाम सप्तदशो
ऽध्यायः ॥१७॥ सुभम् समाप्तम् ॥ ॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु श्रीरामचन्द्रायनमः
श्रीसीता राम जी सहाय



श्रीगणेशायनमः ॥ अर्जुनउवाच ॥ मू॰ ॥
संन्यासस्यमहाबाहोतत्वमिच्छामिवेदि
तुम् ॥ त्यागस्यचहृषीकेशपृथक्केशिनि
षूदन ॥टी॰॥ हेमहाबाहो हेहृषीकेश हेकेशिनिषू
दन सन्यासऔरत्यागकेस्वरूपकोमैंअलगअलगजानने
कीइच्छाकरताहूँइसलियेआपवर्णनकीजिये॥ ॥ ॥१॥ ॥ ॥
मू॰ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ काम्यानांकर्म
णांन्यासंसंन्यासंकवयोविदुः ॥ सर्वक
र्मफलत्यागंप्राहुस्त्यागंविचक्षणाः ॥टी
का ॥ हेअर्जुनसूक्ष्मदर्शीपुरुषकाम्यकर्मोंकेत्यागको
सन्यासकहतेहैं औरतत्वविचारमेंकुशलपुरुषसम्पूर्ण
कर्मोंकेफलोंकेत्यागकोत्यागकहतेहैं ॥ ॥०॥ ॥२॥ ०॥
मू॰ ॥ त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषि
णः ॥ यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यमितिचा
परे ॥टी॰॥ कोईबुद्धिमानपुरुषकहतेहैंकिरागद्वे
षादिक दोनोंकीनरहकर्मभीत्यागनेयोग्यहैं औरकोईबु

द्धिमानपुरुषकहतेहैंकियज्ञदानतपरूपकर्मनहींत्यागनाचाहिये ॥ ॥३॥

मू० ॥ निश्चयं शृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥ त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ टी० ॥ हेभरतकुलमेंश्रेष्ठ अर्जुनतिनकर्मोंकित्यागमेंतूहमारेनिश्चयकोसुनहे सम्पूर्णपुरुषोंमेंश्रेष्ठअर्जुनत्यागतीनप्रकारकाहोताहै ॥ ॥ ० ॥ ॥४॥ ॥ ० ॥ ॥

मू ॥ यज्ञदानतपः कर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥ यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ॥ टी० ॥ फलकीइच्छासेरहितकियेहुएयज्ञदानतपरूपकर्ममननशीलपुरुषोंकेअन्तःकरणकोशुद्धकरनेवालेहैंइसलियेइन्हेंनहींत्यागनाचाहिये ॥ ॥५॥ ॥

मू० ॥ एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच ॥ कर्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम् ॥ टी० ॥ हेअर्जुनमैंपरमेश्वरकाश्रेष्ठनिश्चययहहैकियज्ञदानादिककर्मभी

कर्तृत्वअभिमानऔरस्वर्गादिकफलोंकीइच्छासेरहित होकरनाचाहियै ॥ १ ॥ ० ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ० ॥ ॥ ६

मू॰ ॥ नियतस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ तुसंन्यासः कर्मणोनोपपद्यते ॥ मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ टी॰ ॥

नित्यकर्मनहींत्यागनाचाहियेलोगमोहसेनित्यकर्मत्यागरदेतेहैंउसेनामसत्यागकहतेहैं गी॰ ॥ ० ॥ ७ ॥ ० ॥

मू॰ ॥ दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥ सकृत्वाराजसंत्यागं नैवत्यागफलंलभेत् ॥ टी॰ ॥ शरीरकेक्लेशकेभयसेजो नित्यकर्मोंकोत्यागकरताहैउसेराजसत्यागकहतेहैं ऐसेत्यागसेलोगत्यागकिफलशांतिकोनहीप्राप्तहोतेहै ॥ ८

मू॰ ॥ कार्यमित्येवयत्कर्म नियतंक्रियतेऽर्जुन ॥ संगंत्यक्त्वाफलंचैव सत्यागः सात्विकोमतः ॥ टी॰ ॥ यत्कर्मकरनाहीउचितहै ऐसेविचारयुक्तव कर्तृत्वअभिमानऔरफलकीइच्छासेरहि

नहोकरनित्यकर्मोंकेकरनेकोसात्विकत्यागकहतेहैं ॥९॥

मू० ॥ नद्वेष्ट्यकुशलं कर्मकुशले नानुषज्ज
ते ॥ त्यागीसत्वसमाविष्टोमेधावीछि
न्नसंशयः ॥ टी० ॥ पूर्वोक्तसात्विकत्यागवालापुरु
षजबरजतमसेरहितहोसत्वकरिकेहीपूररहोताहैतभी
तत्वज्ञानवालाहोकरसम्पूर्णसंशयोंसेरहितहोताहै इस
लियेकुशलऔरअकुशलमेंरागद्वेषनहीकरता ॥ ॥१०॥

मू० ॥ नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशे
षतः ॥ यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभि
धीयते ॥ टी० ॥ देहाभिमानीकोईपुरुषभीसम्पूर्ण
कर्मोंकोनहीत्यागसक्ताइसलियेकर्मोंकेफलकात्या
गीअज्ञानीपुरुषभीत्यागीकहलाताहै ॥ ॥ ॥११॥ ॥ ॥

मू० ॥ अनिष्टमिष्टंमिश्रंच त्रिविधंकर्मणः
फलम् ॥ भवत्यत्यागिनांप्रेत्य नतुसंन्यासि
नांक्वचित् ॥ टी० ॥ लेकिनअज्ञानीत्यागियोंको
मरनेकेपीछेइष्टअनिष्टऔरमिश्रयहतीनप्रकारकाफ

लप्राप्तहोताहै औरमुख्य (ज्ञान) संन्यासियोंको(
इनतीनोंफलोंमेंसेकोईभीनहींप्राप्तहोता ॥ ॥ ॥१२॥॰
मू॰ ॥ पंचैतानिमहाबाहो कारणानि निबो
धमे ॥ सांख्येकृतांते प्रोक्तानि सिद्धयेसर्व(
कर्मणाम् ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुनबेदान्तशास्त्रमेंऐसाक
हाहै कि अधिष्ठानादिकपंचकारणोंहीसे सम्पूर्णकर्म(
सिद्धहोतेहैं उन्हें तूहमसेसुनकर निश्चयकर ॥ ॥१३॥॰
मू॰ ॥ अधिष्ठानंतथाकर्ता करणंचपृथग्वि
धाम् ॥ बिबिधाश्चपृथक्चेष्टा दैवंचैवात्र
पंचमम् ॥ टी॰ ॥ शरीर (अधिष्ठान) अहंकार(
कर्ता) अनेकप्रकारके (करण इन्द्रियां) औरबहुत
तरहकी अलगअलगचेष्टा (प्राणापानादिक) पं
चवांदेव (इन्द्रियोंकेदेवता) एपांचसम्पूर्णकर्मोंकेकारण
है ॥१४
मू॰ ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभते
नरः ॥ न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहे
तवः ॥ टी॰ ॥ यहपुरुषशरीरवाक्यमनइनतीनोंक

रिकेजिननेधर्मअथवाअधर्मरूपकर्मप्रारंभकरताहै
उनसबोंकेअधिष्ठानादिकपांचहीकारणहैं ॥ ॥ ॥१५॥

मू० ॥ तत्रैवंसतिकर्त्तारमात्मानंकेवलंतुयः
॥ पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः

॥टी०॥ तिनअधिष्ठानादिकपांचोकरणोंसेउत्पन्नहुए
सम्पूर्णकर्मोंमेंजोपुरुषअसंगउदासीनरूपआत्माकोकर्त्ता
रूपदेखताहैवहमूर्खशास्त्रसेउत्पन्नहुईविवेकबुद्धिसेरहितहै ॥१६

मू० ॥ यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते
॥ हत्वापिसइमांल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥

टी० ॥ जोविद्वानपुरुषकर्तृत्वअभिमानसेरहितहैऔरउस
कीबुद्धिकर्मोंमेंलिपायमाननहींहोतीवहसम्पूर्णलोकोंकोमा
रडालतेहुएभीबंधायमाननहींहोता ॥ ॥ ॥०॥ ॥१७॥ ॥०॥ ॥

मू० ॥ ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञातात्रिविधाकर्मचोदना ।
। करणंकर्मकर्तेतित्रिविधःकर्मसंग्रहः ॥टी०
ज्ञान(कर्तव्यकर्मकास्मरणरूपबोध)ज्ञेय(कार्य)परिज्ञाता(
अहंकार)येतीनोंकर्ममेंलगादेतेहैंऔरकरणकर्मकर्तायतीनों
नोंकर्मकेआधीनरहतेहैं ॥श्लोकअठारहवांसमाप्त ॥ ॥१८॥ ॥

मू॰ ॥ ज्ञानंकर्मचकर्त्ताचत्रिधैवगुणभेदतः ॥ प्रोच्यतेगुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि ॥ टी॰ ॥ सांख्यशास्त्रमेंज्ञानकर्मकर्त्ताइनतीनोंकोसत्वादिकतीनगुणोंकेभेदसेतीनप्रकारकावर्णनकियाहैतिनज्ञानादिकोंश्रौरउनकेभेदकोतूहमसेयथार्थसुन ॥ ॥ १९ ॥ ॥

मू॰ ॥ सर्वभूतेषुयेनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥ अविभक्तंविभक्तेषुतज्ज्ञानंविद्धिसात्विकम् ॥ टी॰ ॥ यहपुरुषजिसज्ञानकरिकेपरस्परभेदवालेसम्पूर्णभूतोंमेंसर्वत्रव्यापकएकअव्ययसत्तारूपभावकोसाक्षात्कारकरताहैउसेसात्विकज्ञानकहतेहैं ॥ ॥ २० ॥ ॥

मू॰ ॥ पृथक्त्वेनतुयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान ॥ वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम ॥ टी॰ ॥ जिसज्ञानकरकेपरस्परभेदवालेसम्पूर्णभूतोंमेबहुतसेन्मात्माजांनेजानतेहैंउसेराजसज्ञानकहतेहैं ॥ २१

मू॰ ॥ यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिनकार्येसक्तमहेतुकम ॥ अतत्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतम ॥ टी॰ ॥ जिसज्ञानकरकेकिसीएकही

मूर्तिमेंपरमेश्वरका अल्पज्ञताबोधहोताहैउसेतामसज्ञान

करतेहैं ॥ ॥२२॥

मू० ॥ नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृत

म् ॥ अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्वि

कमुच्यते ॥टी०॥ कर्तृत्वअभिमानवफलकीइ

च्छाओररागद्वेषसेरहितजोनित्यकर्मकियेजातेहैंउन्हे

सात्विककर्मकहतेहैं ॥ ॥२३॥

मू० ॥ यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकारेणवा

पुनः ॥ क्रियतेबहुलायासंतद्राजसमु

दाहृतम् ॥टी०॥ कर्तृत्वअभिमानओरबहुतक्लेश

युक्तजोसकामकर्मकियेजातेहैंउसेराजसकहतेहैं ॥२४॥

मू० ॥ अनुबंधंक्षयंहिंसामनपेक्ष्यच

पौरुषम् ॥ मोहादारभ्यतेकर्मयत्तत्तामस

मुच्यते ॥ अशुभफलप्राप्तकरनेवालेक्षयहिंसाओ

रपौरुषकोबिनाबिचारेकेवलअविवेकसेजोकर्मकियेजा

तेहैंवेतामसकहलातेहैं ॥ ॥२५॥

मू० ॥ मुक्तसंगो नहंबादी धृत्युत्साहसम
न्वितः ॥ सिद्ध सिद्धोर्निर्बिकारः कर्त्तासा
त्विक उच्यते ॥ टी० ॥ कर्तृत्वअभिमानऔरफ
लकीइच्छासेरहितधी रजऔरउत्साहसंमितसिद्धिऔर अ
सिद्धदोनोंमेंनिर्बिकारऐसेकर्मकरनेवालासात्विककर्ताकहला
ताहै ॥२६
मू० ॥ रागी कर्मफल प्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्म
कोऽशुचिः ॥ हर्षशोकान्वितः कर्त्ताराजसः
परिकीर्त्तितः ॥ टी० ॥ जोकर्त्ताकर्तृत्वअभिमानऔ
रफलकीइच्छासमेतद्रव्यहोनेपरभीखर्चकरनेमेंअसमर्थहिं
सास्वभाववालाऔरहर्षशोकयुक्तकर्मकर्त्ताहै उसेराजस
कहतेहैं ॥ ॥२७॥
मू० ॥ अयुक्तः प्राकृतः स्तब्ध शठोनैष्कृ
तिकोऽलसः ॥ बिषादी दीर्घसूत्रीच
कर्त्तातामसउच्यते ॥ टी० ॥ जोपुरुषबिवेक
रहितअसावधानवअनम्रस्वभावयुक्तपरअपकारी
आलसी दुःखीऔरदीर्घसूत्रीहोकर्मकर्ताहैउसेतामसक
र्ताकहतेहैं ॥ ॥२८॥

मू०॥ बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृ

णु ॥ प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंज

य ॥टी०॥ हेअर्जुन सत्वादिकगुणोंकेभेदसे बुद्धिऔर

धीरज भी तीन प्रकारके होते हैं ॥ ॥२९॥

मू०॥ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भया

भये ॥ बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ

सात्विकी ॥टी०॥ हेअर्जुन जो बुद्धि प्रवृत्ति निवृत्ति

कार्य अकार्य भय अभय और बंध मोक्षको जानती है उसे सात्वि

क बुद्धि कहते हैं॥ ॥३०॥

मू०॥ यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमे

व च ॥ अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पा

र्थ राजसी ॥टी०॥ हेअर्जुन जिस बुद्धिसे धर्म अध

र्म कार्य अकार्य ठीक ठीक न हीं जाने जाते उसे राजसी बुद्धि

कहते हैं ॥ ॥३१॥

मू०॥ अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽ

ध्टता ॥ सर्बार्थान् बिपरितांश्च बुद्धिः सा
पार्थतामसी ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन जो बुद्धि अधर्मको
धर्म इसीतरहसे और भी सब उलटाही जानती है उसे तामसी बुद्धि कहतेहैं
॥३२॥

मू॰ ॥ ध्टत्या यया धारयंते मनः प्राणेंद्रिय
क्रियाः ॥ योगेनाव्यभिचारिण्या ध्टतिः सा
पार्थ सात्विकी ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन अव्यभिचारी योग
करके युक्त यह पुरुष जिस धारणासे मन प्राण और इन्द्रियोंको
रोकताहै उसे सात्विकी धारणा कहतेहैं ॥ ॥ ॰ ॥ ॥३३॥ ॰ ॥

मू॰ ॥ ययातु धर्मकामार्थान् ध्टत्या धारय
तेऽर्जुन ॥ प्रसंगेन फलाकांक्षी ध्टतिः सा
पार्थ राजसी ॥ टी॰ ॥ हेअर्जुन कर्तृत्व अभिमान
और फलकी इच्छासमेत यह पुरुष जिससे अर्थ धर्मकाम
इनतीनोंको धारणा करताहै उसे राजसी धारणा कहतेहैं ॥३४॥

मू॰ ॥ यया स्वप्नं भयं शोकं बिषादं मदमेवच ॥
नबिमुंचति दुर्मेधा ध्टतिः सा पार्थ तामसी ॥

॥टी०॥ हे अर्जुन दुर्बुद्धि पुरुष जिस धारणा करिके स्वप्न भय शोक विषाद और मदकोनहीं त्याग करै सकता उसे नामसी धारणा कहते हैं ॥ ॥३५॥

मू०॥ सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥ अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥टी०॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन अब तू तीन प्रकार के सुखको हमसे सुन जिस समाधि सुख में यह पुरुष अभ्यास से रमण करता हुआ दुःखको नष्ट कर देता है ॥ ॥३६

मू०॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥ तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥टी०॥ जो सुख प्रारंभमें विषकी नाई क्लेशित होता है और अन्तमें आत्मविषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होकर अमृत के तुल्य होजाता है उसे सात्विक सुख कहते हैं ॥३७

मू०॥ विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥ परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥टी०॥ विषय इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न हुवा सुख

 आरंभकालमें अमृतके तुल्य और अंतमें विषयके तुल्य होता

 है इसलिये उसे राजसी सुख कहते हैं ॥ ॥०॥ ॥३८॥ ॥०।

मू॰ ॥ यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ टी

का ॥ जो सुख आरंभ और परिणाम दोनो कालमें बुद्धिको मो

ह करता है और निद्रा आलस प्रमादसे उत्पन्न होता है उसे ताम

स कहते हैं ॥ ॥३९॥

मू॰ ॥ न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥

सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ टी

का ॥ हे अर्जुन पृथ्वी स्वर्ग और देवताओंके यहां ऐसा कोई प

दार्थ नहीं है जो सत्वादिक तीनों गुणोंसे रहित हो और माया से उ

त्पन्न हुवा हो — ॥४०॥

मू॰ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

टी॰ ॥ हे अर्जुन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनके कर्म स्व

भावसे उत्पन्न गुणोंकरके अलग अलग हैं उन्हें सुनिये ॥ ॥४१॥

मू०॥ शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेवच

॥ ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभाव

जम् ॥ टी०॥ अंतःकरणकासंजम इन्द्रियोंकासंजम

तप बाह्यान्तर पवित्रता व क्षमा सीधापन आत्मबोध

आत्माऔरपरमात्माकीएकताकाबोध वेदशास्त्रवाक्यों

मेंबिस्वास येसबब्राह्मणोंकेस्वभावसिद्धकर्महैं॥॥४२॥

मू०॥ शौर्यंतेजो धृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपला

यनम्॥ दानमीश्वरभावश्च क्षात्रंकर्मस्वभा

वजम्॥ टी०॥ शूरपनातेजधीरजचतुराईयुद्धमेंभाग

नानहीउदारताप्रजाकोस्वाधीनरखना येक्षत्रियोंके

स्वभावजकर्महैं॥ … ॥४३॥

मू०॥ कृषीगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम्

॥ परिचरियात्मकंकर्मशूद्रस्यापिस्वभावजम्

॥टी०॥ खेतीकरनागायपालनकरनाव्यापारकरनायेवैश्य

केस्वभावजकर्महैंऔरतीनोंवरणाकीसेवाकरनायहशूद्रका

स्वभावजकर्महै॥॥४४॥॥०॥॥

स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिंलभतेनरः ॥ स्वकर्मनिरतः सिद्धिंयथा विंदतितच्छृणु ॥ टीका ॥ मनुष्यअपनेअपनेकर्ममेंनिष्ठावानहुएजिसप्रकारसेसंसिद्धिकोप्राप्तहोतेहैंउसेसुन ॥ ॥ ॥४५॥ ॥

मू॰ ॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानांयेनसर्वमिदंततम् ॥ स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिंविंदतिमानवः ॥ टी॰ ॥ जिसईश्वरसेआकाशादिकसम्पूर्णभूतउत्पन्नहोतेहैं अर्थात जिसईश्वरकेअन्तरभूतसम्पूर्णसृष्टिहै उसेमनुष्यअपनेकर्ममेंकोअनुष्ठानकरताहुवा संतुष्टकरकेअन्तःकरणकीशुद्धिकोप्राप्तहोताहै ॥ ॥४६

मू॰ ॥ श्रेयान्स्वधर्मोविगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात ॥ स्वभावनियतंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम ॥ टी॰ ॥ सम्पूर्णअंगोंसेपरिपूर्णअनुष्ठानकियेहुयेपरायेधर्मसेअंगहीनअपनाधर्मअत्यन्तश्रेष्ठहैस्वभावजकर्मकरनेसेपापनहींलगता ॥ ॥४७॥

मू॰ ॥ सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि नत्यजेत ॥ सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन स्वभावज कर्म सदोष होनेसे भी नहीं त्यागना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण धर्म धूमसे अग्निकी नरह दोषोंसे घिरे हुए हैं ॥४८

मू॰ ॥ असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥ नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ टी॰ ॥ सर्वत्र असक्तबुद्धि जितात्मा और इच्छाओंसे रहित ऐसा अधिकारी पुरुष संन्यासहीसे परम नैष्कर्म्यसिद्धि अर्थात् आत्मज्ञानको प्राप्त होता है ॥ ॥ ॥४९॥

मू॰ ॥ सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ॥ समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन आत्मज्ञानको प्राप्त हुवा पुरुष जिसप्रकारसे ब्रह्मको साक्षात्कार करलेता है और ज्ञानमें श्रेष्ठ निष्ठावाला होता है उसे हम संक्षेपसे कहते हैं ॥ ॥५०

मू॰ ॥ बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥ शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा राग

द्वेषौ व्युदस्य च ॥टी॰॥ बिसुद्धबुद्धियुक्तपुरुष धै
र्य्यकरके संघातों में प्रीति नहीं करता और शब्दादिक बिषयों
व रागद्वेषको त्यागकरके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ ॥५१॥ ॥

मू॰ ॥ बिबिक्तसेवी लघ्वासी यतवाक्काय
मानसः ॥ ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समु
पाश्रितः ॥टी॰॥ जिसपुरुषने शरीर मन बाणीको
जीतलिया है और थोडा भोजन करने हुए वैराग्ययुक्त एकांतदे
शमें स्थित ध्यानयोगपरायण है वह ब्रह्मको साक्षात्कार करलेता है
॥५२॥

मू॰ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम
॥ बिमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते
॥टी॰॥ जो पुरुष अहंकार बल (बेदशास्त्रनिंदितबस्तुकीइ
च्छा) दर्प काम क्रोध भोगसाधन ममतादिकोंका त्यागी है और
भगवतविच्छेप से रहित है वह ब्रह्मको साक्षात्कार करलेता है ॥५३

मू॰ ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्ष
ति ॥ समः सर्बेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम
म ॥टी॰॥ जो पुरुष ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा है और शोक व इ

च्छासे रहित हो सम्पूर्ण भूतों में समदृष्टि वाला है उसे मेरी परा

भक्ति प्राप्त होती है (दूसरा अर्थ) जो पुरुष ब्रह्मभूत प्रस

न्नात्मा है और शोक व इच्छा से रहित है और सम्पूर्ण प्राणियों

में मेरे उत्तम भाव को देखता है ऐसा तत्त्वदर्शी पुरुष ही परा भ

क्ति वाला है अर्थात् उत्तम भक्त है ॥ ॥५४॥

मू० ॥ भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि

तत्त्वतः ॥ ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तद

नंतरम् ॥ टी० ॥ पूर्वोक्त परा भक्ति को प्राप्त हुवा पुरुष मैं प

रमात्मा देव के यथावत् स्वरूप को जानकर मुझे साक्षात्कार कर

ता हुवा देहत्याग के पीछे अभेद रूप से मैं परमेश्वर में प्रवेश होता है

मू० ॥ सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपा

श्रयः ॥ मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पद

मव्ययम् ॥ टी० ॥ मेरे शरणागत पुरुष सदा सम्पूर्ण कि

र्मों को करता हुवा भी मेरी कृपा से शाश्वत अव्यय पद को प्राप्त
होता है ॥५६

मू० ॥ चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः

॥ बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥

टी०॥ इसलियेतूमनसेसम्पूर्णकर्मोंकोमुझेसमर्पणकर
औरसमत्वबुद्धियोगकोस्वीकारकरतेहुए सर्वदामुझमेंचि
त्तवालाहो॥ ॥५७॥

मू०॥ मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्य
सि॥ अथचेत्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनं
क्ष्यसि॥ हेअर्जुनतूमुझमेंचित्तवालाहुवामेरेप्रसादसेदु
स्तरकामक्रोधादिकोंकोभीस्वयंतरिजावेगा औरजोअहंकार
सेतूमेराकह्यानमानेगातोनष्टहोजावेगा॥ ॥५८॥

मू०॥ यदहंकारमाश्रित्य नयोत्स्यइतिमन्य
से॥ मिथ्यैषव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियो
क्ष्यति॥टी०॥ हेअर्जुनजोतूअहंकारसेयहमानताहैकि
मैंस्वधर्मयुद्धनकरूंगातोमिथ्याहीहैक्योंकितुम्हाराक्षत्रीस्व
भावयुद्धमेंअवश्यहीप्रवृत्तिकरावेगा॥ ॥५९॥

मू०॥ स्वभावजेनकौंतेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा
॥कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशो(
पितत्॥टी०॥ हेअर्जुनतूमोहकेआधीनहोकरजिस

युद्धकीइच्छानहीकरताउसेतूपराधीनअर्थात्क्षत्रीस्वभावाधी

नहोअवश्यहीकरेगा मू० ॥ ॥६०॥

मू० ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ॥

भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ टी० ॥

अन्तर्जामीईश्वरसम्पूर्णप्राणियोंकेहृदयमेस्थितकलमेंकठपुत

रियोंकोसूत्रधारकीनरहअपनीमायाकीद्वारा सम्पूर्णप्राणियोंको

इधरउधरभरमायाकरताहै ॥ ॥६१॥

मू० ॥ तमेवशरणंगच्छ सर्वभावेनभारत ॥ तत्प्र

सादात्परांशांतिं स्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ टी

का ॥ इसलियेहेअर्जुनतूसबप्रकारसे तिसईश्वरकीशरण

लेनेसेईश्वरकेप्रशादसेतूपरमशांतिऔरसाश्वतस्थानको प्राप्तहोवेगा ॥६२॥

मू० ॥ इतितेज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥ वि

मृश्यैतदशेषेणयथेच्छसि तथाकुरु ॥ टी० ॥ हेअर्जु

नपूर्वोक्तप्रकारसेहमने अत्यन्तगुह्यआत्मज्ञान तुमसेबरानकिर

याअबतुमइसगीताशास्त्रकोआदिसेअन्ततकबिचारकर जैसी

तुम्हारी इच्छाहोवेसाकर ॥ ॥६३॥

मू॰॥ सर्वगुह्यतमंभूयः शृणुमेपरमंवचः॥ इष्टो
ऽसिमेदृढमितिततोवक्ष्यामितेहितम्॥ टी॰॥ हे
अर्जुनतूमुझेअत्यन्तप्याराहैइसलियेतेरेकल्यानकेलियेसब
सेअत्यन्तगुह्यअोरश्रेष्ठवचनमैंफिरकहताहूँ।उन्हेसुन॥६४॥

मू॰॥ मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु॥
मामेवैष्यसिसत्यन्तेप्रतिजानेप्रियोऽसिमे॥ टी॰
हेअर्जुनतूमुझेअत्यन्तप्याराहैइसलियेमैंसत्यहीकहताहूँतू
मुझमेंमनवालामेराभक्तऔरमेरेहीपूजापरायणहोऔरमेरेहीन
मस्कारकरतोतूनिःसंदेहमुझेप्राप्तहोवेगा॥ ॥६५॥

मू॰॥ सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज॥ अ
हंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः॥ टी॰
हेअर्जुनतूसबनरहकेसम्पूर्णकर्मोंकोत्यागकरमेरीशरणमेंप्रा
प्तहोतोमैंतुझेसम्पूर्णपापोंसेछोडायमोक्षकरूंगातूशो
कमतकर॥ ॥६६॥

मू॰॥ इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन॥
नचाशुश्रूषवेवाच्यंनचमांयोऽभिसूयति॥ टी॰

तुमइस गीताशास्त्र कोअजितेन्द्रि(तपहीन) अभक्तगुरुकी
सेवासेहीनऔरमेंपरमेश्वरमेंमनुष्यबुद्धिवालेपुरुषोंसेकिसी
दशामेंभीनहींउपदेशकरना ॥ ~~~~~~ ॥६७॥

मू० ॥ यइदंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥ भ
क्तिंमयिपरांकृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ टी० ॥
जोपुरुषपूर्वोक्तिदोषोंसेरहितमेरेभक्तोंमेइसगीताशास्त्रको
स्थापनकरेगावहहमारीउत्तमभक्तिको प्राप्तहोतेहुए संशय
सेरहितहोअभेदरूपसेहममेंप्राप्तहोवेगा ॥ ॥ ॥६८॥

मू० ॥ नचतस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मेप्रियकृत्तमः ॥
भवितानचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥ टी० ॥ पू
र्वोक्तिपुरुषकोमेंपरमेश्वरसबसेअधिकप्याराहूं औरइसपृथ्वी
परवहभीमुझेअत्यन्तहीप्याराहैं ॥ ~~~~~~ ॥६९॥

मू० ॥ अध्येष्यतेचयइमंधर्म्यंसंबादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः ॥
टी० ॥ जोपुरुषहमतुमदोनोंकेधर्मवद्धिकसम्वादरूपइसगीता
शास्त्रकोपाठकरेगावहनिःसंदेहज्ञानयज्ञकरकेहमेपूजताहै ॥७०॥

मू॰ ॥ श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ॥ सो ऽपि मुक्तः शुभांल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ टी॰ ॥ जो पुरुष श्रद्धावान हो और असूयादोष से रहित हुवा इस गीताशास्त्र को केवल श्रवणमात्रही करेगा वह भी निष्पाप हो अवश्यही धर्मात्मा पुरुषों के शुभ लोकों को प्राप्त होवेगा ॥ ७१ ॥

मू॰ ॥ कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥ कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ टी॰ ॥ हे अर्जुन इस गीताशास्त्र को तुमने एकाग्रचित्त होकर सुना इसे सुनकर तुम्हारा अज्ञानजन्य सम्मोह नष्ट हुवा या नहीं ॥ ७२ ॥

मू॰ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ॥ स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये बचनं तव ॥ टी॰ ॥ हे भगवन आपके प्रसाद से मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हुवा तिस से मेरा सम्पूर्ण मोह सब संशयों समेत नष्ट हो गया इसलिये मैं अब आपके बचन माननेको तय्यार हूं ॥ ७३ ॥

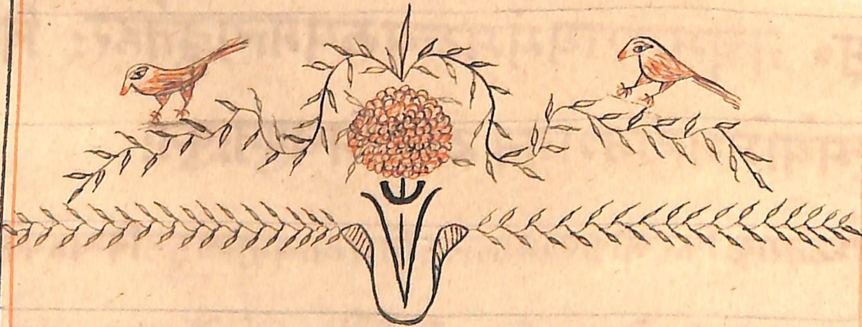
संजयउबाच ॥ मू० ॥ इत्यहंबासुदेवस्य पार्थस्य
चमहात्मनः ॥ संबादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्ष
णम् ॥ टी० ॥ हेधृतराष्ट्रमैंने पूर्वोक्तप्रकारसेमहानुभाववा
लेबासुदेवऔरअर्जुनकेअत्यन्तअद्भुतरोमहर्षणसम्बादकोसुन
॥ ७४ ॥
मू० ॥ व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम् ॥
टी० ॥ व्यासकेप्रसादसेमैंनेइसपरमगुह्ययोगकोइसीस्थान
मेंस्थितसाक्षात्श्रीकृष्णभगवान्केमुखसेकहतेहुएहीसुना ॥ ७५ ॥
मू० ॥ राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संबादमिममद्भुत
म ॥ केशवार्जुनयोःपुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥
टी० हेधृतराष्ट्रश्रीकृष्णअर्जुनकेइसपुण्यरूपअद्भुतसम्बादको
स्मरणकरकेमैंबारम्बारआनन्दकोप्राप्तहोताहूँ ७६ ॥ ० ॥ ७६
मू० ॥ तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतंहरेः ॥ वि
स्मयोमेमहान्राजन्हृष्यामिचपुनःपुनः ॥ टी० ॥
हेधृतराष्ट्र फिरश्रीकृष्णभगवान्केतिसअत्यन्तअद्भुतविश्वरूपको
स्मरणकरकरकेहमेमहान्विस्मयहोगीहै इसलियेमैंबारम्बार प्रसन्न

ताकोप्राप्तहोताहूं॥ ॥७७॥

मू०॥ यत्रयोगेश्वरः कृष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः॥ तत्रश्रीर्बिजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥ टी० जिसपक्षमेंयोगेश्वरश्रीकृष्णभगवानऔरगांडीवधनुषधारीअर्जुनहैंउसीमेंलक्ष्मीबिजयभूतिनीतिअवश्यहोवेगीऐसामुझेनिश्चयहैपू०॥ ॥७८॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसम्बादेमोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टादशो॥ १८॥ ऽध्यायः॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥ श्रीरामचन्द्रायनमः॥



मिति=पूस आषाढबदी=सम्वत १९४८ सान हस्ताक्षर हरिहरप्रसाद

